प्राचीननाटकमणिमाला ।

मालविकाग्निमित्रभाषा

अर्थात्

प्रेम और सौतियाडाह की कहानी

महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ
का भाषा गद्य और छन्दों में अनुवाद ।

अनुवादकर्त्ता

श्रीअवधवासीभूपकुमार,
लाला सीताराम बी. ए.

प्रकाशक,
नेशनल प्रेस—प्रयाग ।

सन् १९१२ ई० । [मूल्य ।)]

प्राचीननाटकमणिमाला ।

मालविकाग्निमित्रभाषा

अर्थात्

प्रेम और सौतियादाह की कहानी

महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ
का भाषा गद्य और छन्दों में अनुवाद ।

अनुवादकर्त्ता,

श्रीअवधवासीभूपउपनाम,

लाला सीताराम बी. ए.

प्रकाशक,

नेशनल प्रेस-प्रयाग ।

सन् १९१३ ई० । [मूल्य ।)

लाला सीताराम, बी. ए., के रचे हिन्दीभाषा के ग्रन्थ ।

PREFACE.

"The greatest of all Indian dramatists, Kalidasa," says Sir Monier Williams, "wrote three plays, the Shakuntala, the Vikramorvashi and the Malavikagnimitra." The first of these as I have stated in the preface to Mahavira Charita, has already appeared in a Hindi dress and the third, which is offered here in translation, "is rather a short play in five acts." Its "inferiority to the two master-pieces of Kalidasa, notwithstanding considerable poetical and dramatic merit and great beauty and simplicity of style" led Professor Wilson to express an opinion that it was not the work of the author of Shakuntala. But "the excellent German translation of it by Professor Weber of Berlin, published in 1856, and the scholar-like edition, published in 1869, by Shankar P. Pandit of the Dekhan College, have set at rest the vexed question of its authenticity, by enabling the students to compare it with Kalidasa's acknowledged writings. So many analogies of thought, style and diction in the Malavikagnimitra have been thus brought to light, that few can now have any doubt about the authorship of the extant drama." *

To Malavikagnimitra belongs the credit of being the only old Sanskrit drama the story of which has been traced to a historical basis. Agnimitra the hero has been found to be a contemporary of Patanjali, the great writer of the Mahabhashya, who flourished in 144 B. C. and his father Pushpamitra is proved to have usurped the kingdom of

* Monier Williams Indian Wisdom Page 477

Magadha by putting the last king of Maurya dynasty to death in B. C. 183. Besides "it furnishes us with a vivid picture of a native court in the most flourishing period of Indian history and is the genuine description of Hindu society before the Mahomedan invasion. For this reason it has an abiding historical value though we cannot of course compare it in this respect with Mrichchakatika which reveals to us the strata of Hindu society that were apparently beneath the notice of our author. The following remarks of Professor Wilson on Malati Madhava are literally applicable to the present drama: 'The manners are purely Hindu without any foreign admixture. The appearance of women of rank in public and their exemption from any personal restraint in their own habitations are very incompatible with the presence of Mahomedan rulers. The licensed existence of Budha ascetics, their access to the great and their employment as teachers of science, are other peculiarities characteristic of an early date'."

Malavikagnimitra, therefore, has a value of its own and my including a translation of it in the present series will I hope meet with the approval of the public.

CAWNPORE,
14th November, 1898.

SITA RAM.

भूमिका ।

अवधपुरी सुखमाअवधि तामधि स्वर्गद्वारि।
जगपावनि सरयू जहाँ बहत सुहावन वारि ॥
तहाँ रह्यो कायस्थ इक श्रीशिवरत्न उदार।
श्रीरघुपतिपदकमल महँ ताकी भक्ति अपार ॥
सियरघुवरयुगचरनरत तासुत सीताराम ।
राशिनाम कवितासुगम धरत भूप उपनाम ॥
कालिदास भवभूति दोउ भारत के कविराय ।
जोन्ह सरिस जिन के सुजस रहे जगत महँ छाय ॥
तिन महँ श्रीभवभूति के नाटक तीनि अनूप ।
भाषा कीन्ह प्रकास सोइ रचि निज मतिअनरूप ॥
कालिदास को रचित यह चौथो नाटकरत्न ।
दिखरावन हित करत अब तासु छटा यह यत्न ॥
विदिशानगरी में रहे अग्निमित्र नरपाल ।
रही चेरि रनिवास में मालविका इक वाल ॥
गुप्त प्रेम तिन दुहुनकर, छिपि छिपि मिलनउपाय ।
चतुर विदूषक होत तहँ अवसर पाय सहाय ॥
राखत नायक ज्यों सदा निज रानिन को मान ।
इक पति के मन की करति एक करति अपमान ॥
सकल विचित्र चरित्रसोइ बरन्यो कविकुलचन्द ।
भाषा महँ सोइ पढ़ि लहैं भाषारसिक अनंद ॥

कानपुर
दीप मालिका
१९५५

सीताराम ।

नाटक के पात्र ।

पुरुष—

अग्निमित्र—विदिशा के राजा और नाटक के नायक
वाहतक—मंत्री
गौतम—नाटक का विदूषक
गणदास } दो नाट्याचार्य
हरदत्त }
एक कुबड़ा

स्त्री—

धारिणी—नायक की जेठी रानी
इरावती—नायक की दूसरी रानी
मालविका—कुमार माधवसेन की बहिन जो कुछ दिन से संयोगबस धारिणी की चेरी बनी है और नाटक की नायिका
कौशिकी—बुद्धमत की एक योगिनी
निपुणिका—इरावती की लौंडी
जयसेना—प्रतीहारी
कुमुदिका }
बकुलावलिका } धारिणी की चेरियाँ
समाहितिका }
मधुकरिका }
माधविका—प्रमदवन की मालिन
मदनिका } दो कलावती स्त्रियाँ
ज्योत्स्निका }
कंचुकी, प्रतीहारी, सिपाही, चेरियाँ, नौकर, चाकर, इत्यादि ।

श्रीसीतारामाभ्यान्नमः ।

मालविकाग्निमित्रभाषा ।

प्रस्तावना ।

[स्थान—एक कमरा]

(नान्दी)

विश्व के ईश पै भक्तन के हित जो पहिरैं नित नाग की खाल ।
जोगिन के सिरमौर तऊँ चिपटे जो प्रिया सों रहैं सब काल ।
गर्व करैं नहिं थामेहु आठहु मूरति सों यह विश्व विशाल ।
सत्य की राह दिखावन को चित शुद्ध करैं तुम्हरे सो कृपाल :

(नान्दी के पीछे सूत्रधार आता है)

सूत्र—बस, बहुत बढ़ाने का कुछ काम नहीं । (नेपथ्य की ओर देख कर) अरे भाई नट यहाँ तो आओ ।

(नट आता है)

नट—कहिये, क्या आज्ञा है ?

सूत्र—आज मुझको सभा के सज्जनों ने आज्ञा दी है कि महाकवि कालिदास का रचा मालविकाग्निमित्र नाटक, जिस का श्रीअवधवासी भूप उपनाम सीताराम ने यथाशक्ति भाषा में अनुवाद किया है, खेलो । तो गाना छेड़ दो ।

नट—यह महाकवि कालिदास का पहिला नाटक है । अब यह पहिले अभिनय किया गया था तो कहा गया था कि भास, सैामिल्ल, कविपुत्र, आदि प्रसिद्ध कवियों के प्रबंधों को छोड नये कवि कालिदास के नाटक खेलने से कौन बड़ाई है ?

सूत्र—तो इसका उत्तर भी तो दिया गया था।

प्राचीन जानि कदापि वस्तुन दोषहीन न मानिए।
पुनि दोषयुत नव ग्रन्थ को जनि मित्र कबहुँ बखानिए॥
विद्वान पंडित नर सदा गुन दोष आप विचारहीं।
ते मूढ़ छोड़ि विवेक जो पर बात नित हिय धारहीं॥

नट—बहुत ठीक है।

सूत्र—तो चलो अपना काम करें।

सिर धरि आज्ञा सभा की करन चहौं मैं आज।
ज्यों रानी की चेरि यह चतुर करै निज काज॥

पहिले अङ्क का विष्कम्भक।

[स्थान—विदिशा-राज-मन्दिर का एक कमरा]

(एक चेरी आती है)

चेरी—मालविका नाटकखेलके गुरू गनदास के पास छलिक सीख रही है। उसी का हाल पूछने बड़ी महारानी ने मुझे भेजा है, तो अब रंगशाला चलूँ।

(अंगूठी हाथ में लिये दूसरी चेरी आती है)

पहिली चेरी—(दूसरी को देखकर) अरी कुमुदिका! तू ऐसा क्या सोचरही है कि पास से जाती है और मुझे देखती भी नहीं?

दूसरी—अरी बकुलावलिका! मैं महारानी की यह अंगूठी देख रही थी, इस में नागमुद्रा जड़ी है, जब तेरा उराहना सुना पड़ा

बकु—(देख कर) वाह! कैसी सुन्दर अंगूठी है! ऐसी है कि इस को देखा ही करै! नग की किरनैं ऐसी फैल रही हैं कि हाथ में जान पड़ता है फूल खिला है।

कुमु—कहाँ जाती हो?

बकु—बड़ी महारानी ने गनदास के पास मालविका के कला सीखने का हाल पूछने भेजा है

कुमु—भला सखी ! मालविका तो नाटक सिखाने के बहाने अलग हटाई रहती है उसे महाराज ने कैसे देख लिया ?

वकु—महारानी के पास चित्र में देखा।

कुमु—कैसे ?

वकु—जब महारानी चित्रशाला में चितेरे का एक चित्र देख रहीं थीं, उसके रंग गीले ही थे, तभी महाराज भी आ गए।

कुमु—तब ?

वकु—जब आदर भाव होगया, और महाराज और महारानी एक ही आसन पर बैठ गये, तब महारानी के चित्र में चेरियों के बीच उसे देख कर महाराज ने पूछा।

कुमु—क्या पूछा ?

वकु—कि यह चेरी तो बड़ी सुन्दर है, इसका क्या नाम है ?

कुमु—सुन्दर होना भी क्या बात है। तुरन्त ही आँखों में गड़ जाता है।

वकु—जब कोई न बोला तो महाराज और भी घबराये, और महारानी से फिर पूछने लगे। इस पर कुँवरि वसुलछिमी बोलीं यह मलविका है।

कुमु—(हंस के) लड़कपन ही तो है, फिर क्या हुआ ?

वकु—तब और क्या होगा। अब मालविका और भी महाराज के सामने नहीं आने पाती।

कुमु—अच्छा। अब अपना अकाज न करो। मैं भी यह अँगूठी ले जा कर महारानी को दे दूँ।

(बाहर जाती है)

वकु—गुरूजी तो यह देखो रंगशाला से आ रहे हैं। अच्छा, तो चलूँ, इन से मिलूँ।

(बाहर जाती है)

पहिला अङ्क ।

[पहिला स्थान—रंगशाला के आगे चौक]

(गणदास आता है)

गण—यों तो अपने कुल की विद्या किसको अच्छी नहीं लगती, पर हम लोग जो अपने नाटक की बड़ाई करें तो कुछ व्यर्थ नहीं है।

यह दृश्य यज्ञ समान जेहि प्रिय सुरन को मुनिवर कहैं ।
करि भेद द्वय जेहि नारि नर शिव एक ही तन में रहैं ॥
रज सत्व तम गुन रस सहित जग चरित इहँ नित देखिये ।
यह भिन्न रुचि के लोग कर एकहि बिनोदन लेखिये ॥

(बकुलावलिका आती है)

बकु—(आगे बढ़ के) पायँलागी गुरुजी !

गण—जीती रहो ।

बकु—गुरुजी ! महारानी पूछती हैं कि आप की चेली मालविका नाटक कैसा सीखती है ?

गण—बेटी ! महारानी से मेरी बिनती कहना और कहना मालविका बड़ी चतुर है,

तेहि सिखवौं जेहि विषय के भाव रंग सुर ताल ।
गुन दिखाय तासों अधिक मोहि सिखावत बाल ॥

बकु—(आपही आप) यह तो इरावती से भी बढ़ती जाती है । (प्रकाश) आप की चेली धन्य है जिसे आप ऐसा समझते है ।

गण—ऐसे लोग सब जगह नहीं मिलते, इसी से मैं पूछता हूँ कि मालविका महारानी के हाथ कैसे लगी ।

बकु—महारानी के एक भाई बीरसेन हैं । वह महाराज की ओर से नर्मदा के तीर अन्तपालगढ़ में रहते हैं । यह लड़की कला सीखने के जोग थी, इससे उन्होंने अपनी बहिन महारानी के पास भेंट भेजी है

गण—(आपही आप) इसके रूप से तो मैं समझता हूँ कि कोई ऐसी वैसी नहीं है। (प्रकाश) हाँ, इसको सिखाने से मुझे भी जस होगा।

विद्या दई सुपात्र कौं प्रगटत गुन अधिकाय।
ज्यों समुद्र सीपी परे जल मोती ह्वै जाय॥

वकु—गुरूजी! आप की चेली कहाँ है?

गण—मैंने उसे अभी पञ्चांग अभिनय सिखा कर विश्राम करने को कहा है, सो वह खिड़की में बैठी हवा खा रही है।

वकु—कहिये तो मैं भी मालविका को यह समाचार सुनाकर सुख दूँ।

गण—हाँ जाओ, हम भी छुट्टी पाके अपने घर जाते हैं।

(दोनों बाहर जाते है)

[दूसरा स्थान—सभा मन्दिर]

(राजा अग्निमित्र और हाथ में पत्र लिये हुए मंत्री बैठे हुए देख पड़ते हैं)

राजा—वाहतकजी! विदर्भ का राजा क्या लिखता है?

मंत्री—श्रीमहाराज! अपना सत्यानाश।

राजा—उसने चिट्ठी में क्या लिखा है?

मंत्री—सुनिये, वह लिखता है—"आपकी आज्ञा है कि 'हमारा मित्र कुमार माधवसेन सम्बन्ध लगाने को हमारे पास आता था। उसे राह में सीवाने के रक्षकों ने पकड़ लिया। सो हम चाहते है कि उसे, उसकी स्त्री और उसकी बहिन को छोड़ दीजिये'। आप यह जानते हैं कि अपने समान राजाओं से राजाओं का बर्ताव कैसा होता है। इसी से आप को पक्षपात न करना चाहिये। माधवसेन की बहिन न जाने कहाँ चली गई। हम भी उसके ढूँढ़ने का यतन करेंगे। आप माधवसेन को हम से छुड़ा सकते हैं। देखिये यहीं है

हमरे साले सचिव को छोड़ै विदिशाराय।
तो हम माधवसेन को छोड़ब बार न लाय।"

राजा—(क्रोध से) तो क्या यह पाजी चाहता है कि काम के बदले काम लें? वाहतक! विदर्भ का राजा हमारा जनम का वैरी है और हमारा सामना करता है, तो अब बीरसेन को सेनापति कर के सेना को आज्ञा दे दो कि उसे जड़ से उखाड़ दे।

मंत्री—जो श्रीमहाराज की अज्ञा।

राजा—और आप क्या समझते हैं?

अमात्य—श्रीमहाराज ने शास्त्र के अनुसार बात कही है।

थोरे दिन के भूप कहँ अरि करि सकिय सँहारि।
नये लगाए पेड़ ज्यौं सहजहि सकिय उखारि॥

राजा—तो फिर आप शास्त्रका बचन प्रमाण कीजिये। इसी लिये सेनापति को अज्ञा दीजिए कि सेना बढ़ावै।

मंत्री—जो श्रीमहाराज की अज्ञा। (बाहर जाता है)

(विदूषक आता है)

विदू—महाराज ने मुझ से कहा था कि हमने मालविका को चित्र में देखा था, सो ऐसा उपाय करना चाहिए कि उसे आँखों देखैं। मैंने भी जो कुछ किया उसे चल कर कहूँ।

राजा—(विदूषक को देख कर) हमारे दूसरे काम का मंत्री भी आगया।

विदू—श्रीमहाराज की बढ़ती हो!

राजा—(सिर हिला के) आओ, बैठो।

(विदूषक बैठता है)

राजा—कुछ उपाय सोचने में तुम्हारी बुद्धि ने काम किया?

विदू—सिद्धि न पूछिए।

राजा कैसे?

विदू—ऐसे हो तो (कान में कुछ कहता है) ।

राजा—वाह मित्र, वाह बड़ी चतुराई का काम किया ; हम तो अब समझते हैं कि हमारा वह बड़ा मनोरथ भी सिद्ध हो जायगा । क्योंकि,

लसत विघ्न सब काज नित साधिय सहित सहाय ।
परी अँधेरे दीप बिन वस्तु न देखी जाय ॥

(नेपथ्य में)—अजी बहुत तकरार का कौन काम है ? महाराज के सामने छोटाई बड़ाई आप खुल जायगी ।

राजा—मित्र तुम्हारी चतुराई का पेड़ फूल देने लगा ।

विदू—अजी फल भी लीजिए ।

(कंचुकी आता है)

कंचु—महाराज ! आमात्यजी विनय करते हैं कि महाराज की आज्ञा पूरी की गई और नाट्य के आचार्य हरदत्त और गणदास भावों के अवतार की नाईं अपना अपना गुन दिखाने स्वामी की सेवा में आए हैं ।

राजा—आने दो ।

कंचु—जो आज्ञा ।

(दोनों को लेकर आता है)

कंचु—इधर, इधर ।

हर—(राजा को देख कर) क्या बात है राजा महिमा की !

सुन्दर परिचित रूप तउँ लखि यह रूपउजास ।
चकित होत हौं आवतहि जगतीपति के पास ॥
छिन छिन नई लखात है सोइ छवि सोइ अकार ।
सागर सरिस नरेस की महिमा अगम अपार ॥

गण—वाह, यह ज्योति कैसे प्रबल है देखो !

सैनिक करत द्वार रखवारी ।
होत न आज्ञा बिन पैठारी ।

सिंहासन ढिग सेवक साथा।
जाइय नाय नाथ पद माथा॥
झपकत नैन तेज पुनि देखी।
मोहि निवारत मनहुँ विसेखी॥

कंचु—महाराज बैठे हैं जाइए।

दोनों—(बढ़ कर) श्रीमहाराज की जय हो!

राजा—आइए (परिजन की ओर) आसन दो आप लोगों को।

(दोनों बैठ जाते हैं)

राजा—यह क्या है कि कला दिखाने के समय दोनों आचार्य साथ ही चले आये?

गण—श्रीमहाराज! मैंने सुतीर्थ से भली भांति अभिनय विद्या सीखी है। महाराज ने भी अधिकार दिया और महारानी ने भी अनुग्रह किया है।

राजा—हाँ, हम जानते हैं; तो क्या हुआ?

गण—सो श्रीमहाराज! आज हरदत्त ने प्रधान सभ्यों के सामने मुझ को कहा कि यह मेरे पाँव की धूर के भी तुल्य नहीं है।

हर—श्रीमहाराज! इन्हीं ने पहिले मुझ को छेड़ा। बोले कि हमारा तुम्हारा समुद्र और गड़ही का अन्तर है। सो श्रीमहाराज शास्त्र और प्रयोग में परीक्षा ले लें। श्रीमहाराज आपही प्रश्न करें।

विदू—अच्छा कहा।

गण—यही तो चाहते ही थे। श्री महाराज ध्यान देकर सुनैं

राजा—ठहरो। महारानी इस में पक्षपात समझैंगी। इस से योगिनीजी और उनके सामने न्याय होगा।

दोनों आचार्य—जो श्री महाराज की इच्छा।

राजा—मौद्गल्य! महारानी से कहो कि योगिनीजी के साथ यहीं आ जाँय।

कंचु—जो आज्ञा—(बाहर जाता है और महारानी धारिणी और योगिनी को साथ ले कर आता है)

कंचु—इधर, इधर, श्रीमहारानीजी ।

धारि—(योगिनी से) माता ! हरदत्त और गणदास का
ड़ा आप कैसा समझती हैं ?

योगि—अपने पक्ष के हारने को न डरिए । गणदास हरदत्त
कम नहीं हैं ।

धारि—तो भी महाराज तो हरदत्त को मानते हैं ।

योगि—आप भी तो महारानी हैं । उदैः

सूर अनुग्रह सो रहै अस्त जु अति उजियार ।
चन्द्रहु निशा प्रसाद से महिमा लहै अपार ॥

विदू—अहा ! यह तो महारानी धारिणी कौशिकी को आगे
; हुए आ गई !

राजा—हम देखते हैं यह तो,

योगिनि सँग लखात यह भूषन धरे अनूप !
ब्रह्मविद्या सँग बेद की त्रयी मनहुँ तिय रूप ।

योगि—श्रीमहाराज की जय हो !

राजा—योगनी जी प्रणाम ।

योगि—महातेजजननी दोऊ सरिस दुहुन परताप ।
धरनिधारिनीनाथ सो रहो वर्षसत आप ॥

धारि—आर्यपुत्र की जय हो !

राजा—आओ । (कौशिकी को देख के) माता विराजिए ।

(सब बैठ जाते हैं)

राजा—योगिनीजी ! हरदत्त और गणदास दोनों आचार्यों
तकरार में आप को प्रश्न करना होगा ।

योगि—(मुसका के) आप मुझे क्यों बनाते हैं । कहीं नगर
ड़कर गांव में हीरा मोती परखाया जाता है ?

राजा—आप तो पंडिता कौशिकी हैं, आप ऐसा क्यों कहती
? हम और महारानी तो पक्षपाती हैं

दोनों आचार्य—महाराज ने यथार्थ कहा। योगिनीजी मध्यस्थ बनकर हम दोनों के गुण दोष बता देंगी।

राजा—अच्छा, शास्त्रार्थ छेड़ दो।

योगि—महाराज! नाट्य में तो प्रयोगही मुख्य होता है। बकवाद का कौन काम है? श्रीमहारानी! आप क्या समझती हैं?

धारि—जो हम से पूछती हो तो हमें तो इन दोनों का झगड़ा ही अच्छा नहीं लगता।

गण—श्रीमहारानी! यह न समझिएगा कि मैं इस से हार जाऊँगा।

विदू—अजी पेट भर बातें सुनै तो। इन दोनों को महीना देने से और क्या मिलता है?

धारि—अरे, तुझे तो बखेड़ा अच्छा लगता है!

विदू—नहीं, नहीं, जब दो मत्त हाथी लड़ने लगते हैं, तो जब तक एक हार नहीं जाता तब तक कहीं दूसरा चुप रह सकता है?

राजा—आप ने कभी इन दोनों का गुन देखा है?

योगि—हाँ, मैंने देखा है।

राजा—तो अब इन दोनों से क्या कहना चाहिये?

योगि—वही तो मैं कहने को थी।

पंडित आप रहैं बने कोउ एक शिक्षा पाय।
एकै विद्या आपनी औरहि सकैं सिखाय॥
औरहि सकैं सिखाय आप विद्वान कहावैं।
गुरु प्रतिष्ठाजोग सुजस सोइ जग में पावैं॥
(भाषत है कवि भूप) करी विद्या तिन खंडित।
पेट पचायो ज्ञान कहावत जग में पंडित॥

विदू—तुम लोगों ने आपका कहना सुना? इस का निचोड़ यह है कि उपदेश देख के न्याय होगा।

हर हाँ हमारे मन की बात

गण—श्रीमहारानी जी ऐसाही सही।

धारि—और जो बेसमझ चेलो उपदेश बिगाड़ दे तो गुरू का क्या दोष है ?

राजा—महारानी! गुरू का दोष नहीं तो किसका ? उस ने ऐसे को सिखाया क्यों ?

धारि—(मुँह फेरकर) अब क्या कहें (प्रकास—गणदास से) बस, आर्यपुत्र का मनोरथ पूरा हुआ, अब बकना व्यर्थ है।

विदू—अच्छा तो श्रीमहारानी कहती हैं। अजी गणदास! तुम तो संगीत की मिठाई खानेवाले हो, तुम्हें बक बक से क्या ?

गण—जी हाँ, महारानी का अभिप्राय यही है। सुनिए अब इसी का अवसर है।

सही न निन्दा और को हारन डर पद पाय।
सो बनियाँ जो शास्त्र से केवल खाय कमाय॥

धारि—तो तुम्हारी चेली तो अभी थोड़े दिन से सीखती है। उस ने तो पूरा पूरा सोखा भी न होगा। उस को तो बुलाना न चाहिए।

गण—इसी से तो मैं कहता हूँ।

धारि—अच्छा तो तुम दोनों अपना गुन योगिनीजी को दिखाओ।

योगि—श्रीमहारानी! यह ठीक नहीं है। जो सर्वज्ञ हैं उन्हें भी अकेले बैठ के न्याय करने में दोष है।

धारि—(अलग) अरी योगिनी! तू मुझे जागते में भी सोई समझती है। (इतना कह के मुँह फेर लेती है)।

(राजा महारानी का यह भाव योगिनी को दिखाते हैं)

योगि—चन्द्रमुखी निजनाथसन होत वाम क्यों आज ?
निजअधीनपति कुलतिया नहिं रूसैं बेकाज॥

विदू मजी इस में कारण है (की ओर देखकर)

तुम्हें तो महारानी ने रोस के मिस बचालिया। कैसाही सिखाया हो उपदेश दिखाने ही से जाना जाता है।

गण—महारानी! आप सुनती हैं लोग क्या समझते हैं? सो मैं

करि बिवाद दिखराइहैं। निज गुण बीच समाज।
जो नहिं माने मम विनय तज्यो मोहिं तुम आज॥

(आसन से उठकर जाना चाहता है)

धारि—चेलों पर गुरू का पूरा वस है, जो चाहिए कीजिए।

गण—मुझे अपनी बदनामी का डर है। (राजा की ओर देख कर) महाराज! महारानी ने अज्ञा दे दी। अब आप जो अज्ञा दीजिए वैसा भाव दिखाया जाय।

राजा—जो योगिनीजी कहैं।

योगि—महारानी के मन में कोई बात है मेरा मन खटकता है

धारि—आप बेधड़क कहिए। स्वामी के बस में उसके नौकर होते हैं।

राजा—मैं भी तो हूँ।

धारि—योगिनीजी! आपही न कहिए।

योगि—महाराज! लोग कहते हैं कि जो छल कि शर्मिष्ठा ने किया था वह औरों के लिये बहुत कठिन है, तो इसी में अब हम लोग दोनों का प्रयोग देखैं।

दोनों आचार्य—बहुत अच्छा, जो योगिनी जी की अज्ञा।

विदू—तो दोनों जने सँगीतशाला में जाओ। जब तुम्हारा ठाठ ठीक हो जाय तो कहला भेजो; नहीं तो हम लोग मृदंग की बोल सुन कर आ जायँगे।

हर—बहुत अच्छा। (उठता है)।

(गणदास धारिणी की ओर देखता है)

धारि—आप की जय हो! हम आप ही की जय चाहते हैं।

(दोनो जाते हैं)

योगि—इधर आइये ।

गण—आया, क्या अज्ञा है ?

योगि—मैं निर्णय के अधिकार से आप लोगों से कहती हूँ कि नख सिख से सुन्दर लोग शृंगार के कपड़े उतार कर प्रवेश करैं ।

दोनों आचार्य—यह हम लोगों से कहने की बात नहीं है ।

(दोनों बाहर जाते हैं)

धारि—(राजा से) जो आप इतनी चतुराई राजकाज में करैं तो कैसी अच्छी बात हो !

राजा—तुम मेरी बात को कुछ और समझ गयीं । मैंने इस में क्या किया ? बराबर विद्यावाले नहीं चाहते कि उन का जस कोई और ले ले ।

(नेपथ्य में मृदंग की ध्वनि सुनाई देती है)

योगि—संगीत होने लगा । देखिये

मधुर जलद की बोल सम मृदु मृदंग को वाद ।
लखत ऊर्ध मुख मोर जेहि सुनि विचारि घननाद ॥
मध्यम स्वर सों मिलत सोइ चित्त अनँद बढ़ाइ ।
करत मत्त नित रसिक जन आसव सम अंग छाइ ॥

राजा—महारानी ! चलो हम लोग भी चलैं ।

धारि—(आपही आप) हाय रे आर्यपुत्र का लंगरपन !

(सब उठते हैं)

विदू—(अलग राजा से) धीरे धीरे चलिए । महारानी जान लेंगी ।

राजा—धरत धीर यहि धुनि तऊ बाढ़त चित्त उछाह ।
हियो मनोरथ शब्द सो चलत सिद्धि की राह ॥

(सब बाहर जाते हैं

दूसरा अङ्क।

[स्थान—रंगशाला]

(आसन पर बैठे हुए राजा, धारिनी, योगिनि, विदू, और नौकर चाकर देख पड़ते हैं)

राजा—योगिनिजी! इन दोनों आचार्यों में पहिले किसका उपदेश देखियेगा।

योगि—दोनों का ज्ञान तो समान है, पर गणदास का पहिले देखना चाहिए। उसकी अवस्था बड़ी है।

राजा—मौद्गल्य! सुना? तुम यह बात दोनों से जाके कह दो और जाओ।

कंचु—जो महाराज की आज्ञा। (बाहर जाता है)

(गणदास आता है)

गण—श्रीमहाराज शर्मिष्ठा का एक चतुष्पदी गीत है। बीच में उसके लय है तो उसी का प्रयोग महाराज भाव समेत ध्यान दे कर सुनें।

राजा—गुरूजी! हम बड़े ध्यानसे सुनते हैं।

(गणदास बाहर जाता है)

राजा—(अलग विदूषक से) मित्र,

सो बैठी नेपथ्य तेहि देखन चित घबरात।
परदा खींचन हेत कर आगे खैंचो जात॥

विदू—(अलग राजा से) आपकी आँखों का मधु तो आ गया है पर मक्खी भी लसी है। अब सावधान हो के देखिए।

(मालविका आती है और गणदास भी उसके अंग की शोभा देखता हुआ आता है)

विदू—(अलग राजा से) देखिए, देखिए, इसकी सुन्दरताई चित्र से कम नहीं है

राजा—(अलग) मित्र !

चित्र देखि मो मन भयो सुन्दरता सन्देह ।
अब जान्यों धरि ध्यान कछु लखी चितेर न देह ॥

गण—बेटी घबड़ाओ नहीं ।

राजा—(आपही आप) अरे, इसका रूप कैसा नख सिख से
.र है!

झुके कंध सुन्दर दोऊ सोहत नैन बिसाल ।
कसे उठे कुच मुख मनहुँ शारद ससि निशि काल ॥
विपुल जांघ काटे मूठ भरि अति सुडौल दोउ पायँ ।
रचे नाचके जोगही अँग अँग सबै लखायँ ॥

माल—(अलाप के चतुष्पद गीत गाती है)

पिया मिलन है कठिन छाँडु ताकी आसा हिय ।
फरकत बाइँ आँखि सगुन कोहिकर यहि मानिय ॥
अब फिर दरसन होय हाय कब तरसत मों जिय ।
हौं परबस मैं परी हियो अरुझो तोसन पिय ॥
(इस के पीछे उसी रस का भाव बताती है)

विदू—(अलग) समझे ? इसने तो चतुष्पदी गीत गाके अपने
आप के अर्पन कर दिया ।

राजा—हम दोनों की प्रीति एकसी ही है देखो,

हिय अरुझो तोसन पिया प्रथम गाय यह बाल ।
निज शरीर दिशि हाथ किय भाव बतावन काल ॥
प्रेम जनावन रीति कोउ रानि सौंह नहिं पाय ।
नायक तोपन मिल कह्यो यहि बिधि सैन बताय ॥

(मालविका गाकर जाना चाहती है)

विदू—ठहरिए, ठहरिए, आप कुछ भूल गईं । मैं कुछ पूछन
ता हूँ ।

गण—बेटी, ठहर जाओ, उपदेश तुम्हारा ठीक कर दिया जाय
जाना

(मालविका फिरकर ठहर जाती है)

राजा--(आपही आप) वाह, इसकी शोभा जिस अवस्था मे देखो विलक्षण ही देख पड़ती है!

रुकि हेम कंकन संधिपै कर वाम कटि ऊपर धरो।
पुनि दक्षिन हाथ प्रियंगु डार समान अति ढीलो परो॥
एक फूल मारत चरन सों निज भूमि ओर निहारि कै।
छबि देत नाचन सों अधिक लखु देह यह सुकुमारि कै॥

धारि--मुझे जान पड़ता है कि आप गौतम की बात कुछ और समझ गये। इस की बात का कौन ठिकाना।

गण--श्री महारानी जी! नहीं, महाराज की सहायता से गौतम भी कुछ समझने लगा है।

मूरख छाड़त मूढ़ता पंडित संगति पाय।
पाय निर्मली कीच ज्यों नीर विमल ह्वै जाय॥

(विदूषक को देख के) तो आप ने क्या निर्णय किया हम सुना चाहते हैं।

विदू--पहिले आप योगिनी जी से पूछिए, उस के पीछे जो कुछ रह गया है वह मैं बता दूँगा।

गण--योगिनी जी। आप कृपा कर के कह दीजिए जो आपने कुछ गुण दोष देखा हो।

योगि--जो कुछ देखा सब निर्दोष था, क्योंकि,

अंग अंग सन भाव बतावत।
गीत अर्थ सब प्रगट जनावत॥
पद दोउ उठे ताल अनुरूपा।
प्रगटाए रस सकल अनूपा॥
नित प्रति रसविकल्प अनुहारा।
रह्यो नाच महँ अभिनय सारा।

भाव साथ आयो तहँ भावा।
रागबन्ध जनु रुचिर बनावा॥

गण--श्री महाराज आप क्या समझते हैं?

राजा—हमें तो अपने पक्ष का गर्व जाता रहा।

गण—आज मेरा आचार्य होना सिद्ध हुआ।

नित उपदेशसुवर्ण को खरा जानिए सोइ।
परे बिबुधजनआगि में साँवर होत न जोइ॥

धारि—धन्य हैं! आपने अपने परीक्षालेनेवालेको प्रसन्न कर दिया।

गण– आपही की कृपा से मेरी वृद्धि होती है कि और कुछ? (विदूषक से) गौतम,अब कहिए आप क्या कहने को थे?

विदू—जब पहिले पहिले उपदेश दिखाया जाता है तो बाम्हन की पूजा की जाती है, उसे आप भूलही गए।

योगि—वाह, वाह, प्रयोग ही की बात पूछी!

(सब हँस पड़ते हैं, मालविका भी मुसकाती है)

राजा--(आपही आप) मेरी आँखों ने अपने विषय का पूरा रस पाया। अहा,

मुसुकानी दीरघनयनि कछुक दसन दिखराइ।
कछुक खुलत केसर धरे खिलत कमलछबि पाइ॥

गण—देवताजी! जो पहिलेही बार होता तो आप ऐसे पूज्य को पूजा हम लोग क्यों न करते?

विदू—तो मैंने सूखे सूखे गर्जते बादल से चातक की भाँति पानी माँगा।

योगि—और क्या!

विदू—तो जाना कि जो लोग पंडितों को प्रसन्न करके कुछ पाने की आस करें वह गदहे ही होते हैं। योगिनीजी ने इसे अच्छा कहा तो मैं यह इनाम देता हूँ (ऐसा कहकर राजा के हाथ से कड़ा छीन लेता है)

धारि—ठहरो, ठहरो, बिना दोनों को देखे अभी कड़ा क्यों देते हो ?

विदू—और का है ना।

धारि—(गणदास को देखकर) गुरू गणदास जी, तुम्हारी चेली ने उपदेश दिखा दिया न !

गण—बेटी चलो, अब हम लोग चलें।

(मालविका गणदास के साथ बाहर जाती है)

विदू—(अलग राजा से) मेरी बुद्धि आप के काम करने में इतनीही चलती है।

राजा—नहीं, नहीं, ऐसा क्यों कहते हो ? हमारे लिए यह परदा नहीं गिरा, यह

भागि ओट भइ दृगन की धुति के लगे किवार।
भई रात मानहु बिते मोंहिय के त्योहार॥

विदू—(अलग) वाह, वाह, आप तो दरिद्र रोगी की नाईं बैदही से दवाई भी माँगते हैं।

(हरदत्त आता है)

हर—श्रीमहाराज ! अब कृपा करके मेरा भी प्रयोग देखिए।
राजा—(आपही आप) देखने का काम तो हो गया (अनुग्रह पूर्वक प्रगट) लाइए हम बैठे हैं।

हर—बड़ी कृपा है।

(परदे के पीछे) जय जय श्री महाराज की। मध्यान्ह का समय हो गया।

राग सारंग

गरमी सन घबराय कमलपातन की छाहीं।
बैठत यहि छन हंस मूँदि दृग पुखरिन माहीं॥

गुँबज पर सन उड़ि कपोत घर भीतर आए।
जात फुहारन पास मोर प्यासे मुँह बाए॥
तपि रहे देव दिननाथ अब पूर्ण तेज धारे प्रबल।
यहि लोक माहिं तव सरिस प्रभु राजत धरि गुनगन सकल॥

विदू—अरे! अरे! हम लोगों के खाने का समय हो गया। वैद्य लोग कहते हैं कि खाने का समय टालने में बड़ा दोष होता है। कहिये हरदत्त जी अब आप क्या कहते हैं।

हर—अब मैं क्या कहूँ।

राजा—(हरदत्त को देख के) अच्छा, तो आपका उपदेश कल देखेंगे। इस समय आप जाइए।

हर—जो श्रीमहाराज की अज्ञा॥ (बाहर जाता है)

धारि—आर्यपुत्र, दुपहर होगया, चलिये नित्य कर्म कीजिए।

विदू—आप भी तो रसोई की जल्दी कराइए।

योगि—(उठके) आप दोनों का कल्यान हो।

(रानी के साथ बाहर जाती है)

विदू—अहा, कुछ रूपही नहीं, नाचने में भी मालविका सब से न्यारी है।

राजा—मित्र!

सहज सुन्दरी ताहि विधि दै अति उत्तम ज्ञान।
विष बुझाइ जनु काम हित गढ़्यो प्रबल एक बान।

अब और हम क्या कहैं, तुम हमारे लिये सोच में रहो।

विदू—और आप मेरी भी तो सुध लीजिये, मेरा पेट तो हलवाई की कढ़ाई की नाईं जल रहा है।

राजा—अच्छा, तो आप हमारे लिए भी जल्दी कीजिए।

विदू—मैं तो बचन दे चुका, पर मालविका का दर्शन तो पराये आधीन है, वह तो चन्द्रमा सी हो रही है जब मेघ उसे छिपा लेता है। आप तो उस गिद्ध की नाईं हो रहे हैं जो कसाई की दुकान पर मांस के लालच से फिरा करता है पर डर के मारे

कुछ छू नहीं सकता। अब मुझही से अपने काज सिद्धि पूँछ पूँछ अपना चित्त प्रसन्न करते हैं।

राजा—मैं क्यों न घबड़ाऊँ। जब

यहि देखतही मम हृदय छाँड़ि सकल रनिवास।
बस्यो आय अति चाव सन मृगलोचनि के पास॥

(सब बाहर जाते हैं)

तीसरे अङ्क का विष्कम्भक।

[स्थान—राजमन्दिर में एक फुलवारी]

(योगिनी की एक चेरी आती है)

चेरी—योगिनीजी ने महाराज की फुलवारी से एक नरंगी* लाने भेजा है तो अब प्रमदवन की मालिन मधुकरिका को ढूँढूँ (घूम के देखकर) यही तो है मधुकरिका, अशोक के पेड़ को बड़ी ध्यान से देख रही है, तो इससे मिलूँ।

(मालिन आती है)

चेरी—कहो मालिन! फुलवारी का काम अच्छी तरह चलता है?

मालिन—अरी समाहितिका! आओ, आओ।

चेरी—सुनो, योगिनीजी ने कहा है कि हम लोगों को उचित नहीं कि महाराज से छूछे हाथ मिलें, तो एक नारंगी ले आ।

मालि—यही तो है नारंगी, ले न। पर कहो तो दोनों गुरू,जो अपने अपने गुन की बड़ाई के लिए लड़ रहे थे, उनमें से योगिनी ने किसका उपदेश अच्छा बताया।

चेरी—दोनों अपने काम में बड़े चतुर हैं। पर चेरी के गुनों से गनदास बढ़ गये।

मालि—मैंने मालविका की कुछ बुराई भी सुनी है।

* नीबू

चेरी—सच तो है ; महाराज उसे चाहते हैं, पर बड़ी महारानी का मान रखने को इस काम में अपनी बड़ाई नहीं जनाते। मालविका भी आज कल उतरी हुई माला की नाईं मुरझाई देख पड़ती है। अब जाऊँगी।

मालि—इस डार की नारंगी तोड़ ले।

चेरी—(नारंगी तोड़ कर) अरी! संत की सेवा से तुझे इस से अच्छा फल मिले।

मालि—चलो साथ ही चलें। मुझे महारानी से कहना है कि लाल अशोक अभी तक नहीं फूला, उस के फुलाने का उपाय करना चाहिए।

चेरी—अच्छा तो है! तेरा भी काम बहुत अच्छा है।

(दोनों बाहर जाती हैं)

तीसरा अङ्क।

[स्थान—राजमन्दिर में एक कमरा]

(काम की विह्वल अवस्था में पड़ा राजा और विदूषक आते हैं)

राजा—(अपनी ओर देख के)

प्रिया दरस पाए बिना दूबर होत सरीर।
बिन देखे मुखचन्द सोइ चलत नयन सों नीर॥
रहत यदपि नित प्रति हियो मृगलोचनि के पास।
जरत सदा केहि हेत क्यों नित प्रति रहत उदास॥

विदू—महाराज! आप धीरज क्यों छोड़े देते हैं? मुझ से मालविका की सखी बकुलावलिका से भेट हुई थी। मैं ने उसे वह संदेसा सुना दिया जो आपने कहा था।

राजा—तो उसने क्या कहा?

विदू—कहा कि मेरी विनती महाराज से कह दो कि आप की अज्ञा मैं अपने ऊपर बड़ा अनुग्रह समझती हूँ पर बड़ी महा-रानी उस बेचारी की अब और भी कड़ी रखवारी करती हैं। अब उसका मिलना ऐसा ही कठिन है जैसे साँप की मनि का, तो भी उपाय करूँगी।

राजा—हे भगवान कामदेव! मेरा मन ऐसी वस्तु पर चला कर जो चारों ओर प्रतिबन्धकों से घिरी है अब ऐसा मारते हो कि जीना कठिन होगया है। (आश्चर्य से)

कहाँ रोग जारत हियो कहाँ सरल तव बान!
मृदु कठोर जो जग सुन्यो सो तोहि महँ भगवान॥

विदू—कहता तो हूँ कि उस काज को सिद्ध करने का उपाय तो मैंने किया है, अब आप धीरज क्यों नहीं धरते!

राजा—मेरा चित तो काम काज से उठा है, अब मैं दिन कैसे काटूँ?

विदू—आज ही तो इरावती रानी ने लाल सेवती के फूल भेज कर निपुणिका से कहला भेजा था कि वसन्त आगया, आज हम चाहती हैं कि आर्यपुत्र के साथ झूला झूलें, आपने भी मान लिया था, तो चलिए प्रमदवन चलें।

राजा—यह नहीं हो सकता।

विदू—क्यों?

राजा—मित्र! स्त्रियाँ बड़ी चतुर होती हैं। क्या तुम्हारी सखी न देखेंगी कि मेरा चित कहीं और लगा है, जो मैं इसे गले भी लगाऊँ?

यदि सन उचित धर्म यह होई।
टारौं आज बात मैं सोई॥
टारत आज वचन निज भाई।
कारन सकिय अनेक बनाई

मन लागे बिन जनसतकारा।
नहिँ अधिकहु मैं उचित विचारा॥

विदू—पर आपको न चाहिए कि रनिवास की ओर से एकाएकी पीठ फेर लें।

राजा—(सोचके) अच्छा तो चलो, प्रमदबन चलैं।

विदू—इधर आइए।

(दोनों बाहर जाते हैं)

[दूसरा स्थान—प्रमदबन के आगे]

(राजा और विदूषक आते हैं)

विदू—देखिए पवन की हिलाई पल्लवों को अँगुलियां बनाकर वसंत मानो आप को प्रमदबन में बुला रहा है।

राजा—(किसी वस्तु का छूना समझ कर) भाई! वसन्त बड़ा समझदार है, देखो

माली कोइल के मधुर मंजुल बोल सुनाय।
काम पीर मन मो दशा पूँछत है ऋतुराय॥
नए आम के बौर की भीनी गन्ध मिलाय।
हाथ मिलावत सो मनहुँ दक्खिन वायु चलाय॥

विदू—चलिए भीतर, वहां सुख मिलेगा।

(दोनों भीतर जाते हैं)

[तीसरा स्थान—प्रमदबन]

(राजा और विदूषक आते हैं)

विदू—यहाँ सावधान होके अपनी चारों ओर देखिए, प्रमदबन की लछिमी ने आप को मानो लुभाने के लिए तरुनियों का सिंगार लजाने को वसंत के फूलों का कपड़ा पहन लिया है।

राजा—मैं तो से देख रहा हूँ

बिम्ब से ओंठ की लाली के जोड़ में लाल अशोक के पात दिखावति।
मांथे के बेंदी समान मनौं सोइ सेवतिफूल विचित्र खिलावति।
अंजन से जहँ भौंरे लसैं तिलकौं तिलकौं से अनूप बनावति।
होड़ में माधवश्री तरुनीन को पूरे सिंगार में मानो चिढ़ावति॥

(दोनों बाग की शोभा देखते हैं)

(काम की अवस्था में मालविका आती है)

माल—महाराज का मन तो मैं जानती नहीं। महाराज से मिलने की लालसा रखने में मुझे भी लाज आती है। मैं अपने चित का हाल सखी से कैसे कहूँ। न जाने बिना उपाय की यह पीर मुझ से भगवान कब तक सहावेंगे। (कुछ दूर चलकर) कहाँ चली जा रही हूँ ? (सोच के) महारानी ने कहा था कि "गौतम के चिबलपन से हिंडोरा टूट गया और मेरे पाँव में चोट लगी है, आज तुमही जाके तपनीय अशोक का मनोरथ पूरा कर दो, मैं नहीं जा सकती; जो पाँच दिन के भीतर फूल निकल आवेंगे तो तुझे (इतना कह के साँस लेती है) जो माँगेगी वही प्रसाद देंगे" तो पहले वहीं चल के उनका कहना कर दूँ। तब तक पायल ले कर बकुलावलिका भी आजायगी। अब जी खोल के थोड़ी देर रोऊँ, और क्या करूँ।

विदू—अरे! यह तो मदपीने वाले को खाँड़ मिल गई!

राजा—अरे! यह क्या है ?

विदू—यह क्या है कुछ थोड़ा बहुत श्रृंगार किए उत्कण्ठा का रूप बनाए मालविका पासही खड़ी है।

राजा—क्या, मालविका ?

विदू—हाँ, हाँ।

राजा—तो अब प्राण रखना अपने बस का हो गया।

सुनि तोसन आई सोइ पासा।
भयो विकल हिय होत हुलासा

पथिक सुनत जिमि सारस बानी।
जानत मिलन चहत अब पानी॥

कहाँ है कहाँ?

विदू—देखो न, पेड़ों की पाँत से निकल कर इधरही तो आ रही हैं।

राजा—देखो, देखो,

उठे पयोधर, कटि दबी, धरे नितम्ब विशाल।
बड़े नयन, मो प्रान सम लखु आवत यह बाल॥

मित्र, जैसी पहिली रही उससे तो अब दूसरी अवस्था में देख पड़ती है।

शर समान पीयर वदन धरि भूषन कछु गात।
कुन्दलता सी सोह धरि कलि कछु पीयर पात॥

विदू—इन्हें भी आप की नाईं कुछ काम का रोग लग गया है।

राजा—मित्रों को ऐसा ही देख पड़ता है।

माल—यही अशोक है जो सुकुमार पाँव का छूना चाह रहा है। अभी तक इसने फूलों का सिंगार नहीं किया है। इसकी भी दसा मेरी ही सी है। इसकी ठंडी छाँह में शिला पर बैठ के कुछ बेर जी बहलाऊँ।

विदू—आपने सुना? कहती है कि मैं भी चाह से घबड़ा रही हूँ।

राजा—इतने से हम आप को सूझबूझवाला थोड़ा ही समझैंगे? क्योंकि

लै जल कन फूलन बिकसावत।
कुरबकरज निज सँग लै आवत॥
मन्द बयारि मलय सन आवत।
बिन कारन अभिलाष बढ़ावत॥

(बैठ जाती है

राजा—मित्र आओ, हम तुम लता की ओट में हो जायँ ।

विदू—इरावती को भी आती देखता हूँ ।

राजा—अजी, कहीं पद्मिनी को देख हाथी ग्राह की चाह करता है । (देखता हुआ ठहर जाता है) ।

माल—हे मन ! तू ऐसा मनोरथ छोड़ दे जो बिना अवलंब का है, जहाँ तेरी पहुँच नहीं हो सकती । तू क्यों मुझे दुख देता है ?

(विदूषक राजा की ओर देखता है)

राजा—वाह रे स्नेह की बड़ाई !

चाह वस्तु यद्यपि प्रिया मोहिं जनावत नाहिं ।
सत्य बात सब तर्क सन यदपि न जानी जाहिं ॥
तऊँ हरिनशावकनयनि लखि तव चितसन्ताप ।
मैं जानहुँ मो हित सबै, अहो मनोज प्रताप !

विदू—अभी आप की शंका दूर हुई जाती है । देखिए वह बकुलावलिका आती है जिससे मैंने प्रेम का सनेसा कहा था ।

राजा—कौन जाने उसे हमारी बात की सुध हो न हो ।

विदू—क्या आप समझते हैं कि यह लौंड़ी आप का ऐसा भारी सनेसा भूल जायगी ?

(पायल हाथ में लिए वकुलावलिका आती है)

वकु—सखी अच्छी हो ?

माल—अरी वकुलावलिका आई ? आओ, आओ, बैठो ।

वकु—(बैठ के) आज तुम से कौन काम करने को कहा गया है, तुम से हो जायगा । लाओ अपना एक पाँव हमें दो तो हम उसे रँग दें और घुँघरू पहिना दें ।

माल—(आपही आप) अरे मन ! क्यों फूला जाता है ? यह बड़ाई तुझे दी गई । इस विपति से अपने को कैसे बचाऊँ ? अच्छा, यही रँगना मेरा मृतकशृंगार भी होगा ।

वकु क्या सोच रही हो ? महारानी को इस बात की बड़ी

घबराहट है कि इस अशोक में जल्दी फूल लगें।

राजा—तो क्या अशोक फुलाने का यह उपाय हो रहा है।

विदू—क्या आप नहीं जानते कि महारानी बिनाकारन इसे रनिवास की नाईं कब सिंगार करने देंगी।

माल—(पाँव खींच के) रहने दे, इस बेर मुझे दुख न दे।

वकु—अरी तू तो मेरे जी से प्यारी है। (पाँव रँगने लगती है)

राजा—परत प्रिया के चरन महँ प्रथम रंग की रेख।

जरे काम तरु अंकुर सम लखि छबि देत विशेख॥

विदू—सच तो यह है कि इन्हें जो काम दिया गया है वह ऐसा ही चरणों के जोग है।

राजा—तुम ने बहुत ठीक कहा, यही उचित है कि,

निसरत नख सन ज्योति मंजु घुँघुरू जहँ बाजत।

कोमल पद सुकुमार रुचिर पल्लव रँग राजत॥

फूल खिलावन हित अशोक के रूखहि मारहि।

मान किए अपराध देखि कै हनै पियारहि॥

विदू—तुम्हें इनके अपराध करने का अवसर मिलेगा।

राजा—मैं सिद्धदर्शी ब्राह्मण का वचन अपने सिर पर लेता हूँ।

(मद की माती इरावती चेरी समेत आती है)

इरा—परी निपुणिका! मैंने सुना है कि मद से भी हम लोगों की शोभा बढ़ जाती है, लोग सच कहते हैं?

निपु—पहिले तो लोगों की बात ही रही, अब सच हो गई।

इरा—यह तो मुँह देखी कहती है। भला कहो तो तुझे कैसे जान पड़ा कि महाराज झूले के घर गए हैं।

निपु—आपके ऊपर उन का प्रेम बड़ा होने से।

इराव—झूठ न बक, ठीक ठीक कह।

निपु—गौतम ने कहा; उसे तो वसन्त में कुछ भेट मिलने क लालच है न; चलिए, चलिए, जल्दी चलिए।

इरा—(मदमाती की नाईं चलती हुई) एरी ! मद के मारे मेरा जी तो आर्यपुत्र के देखने को घबड़ा रहा है, पर पाँव सीधे नहीं पड़ते।

निपु—पहुँच तो गये हिंडोले के घर में।

इरा—निपुणिका ! आर्यपुत्र तो यहाँ नहीं देख पड़ते।

निपु—देखो तो हँसी करने को कहीं महाराज छिपे न हो। हम लोग भी इसी काँक के पास अशोक की छाँह में बैठें।

इरा—अच्छा।

निपु—(देख के) देखिए, आम का बौर ढूँढ़ते मुझे चीटें ने काट खाया।

इरा—क्या है ?

निपु—देखिए इस अशोक की छाँह में वकुलावलिका मालविका का पाँव रँग रही है।

इरा—(कुछ शंका दिखाकर) यहाँ मालविका के आने का कौन काम ? तू क्या समझती है ?

निपु—मैं यह समझती हूँ कि महारानी धारिनी के पाँव मे झूले से गिर कर चोट लगने से इन्हें अशोक फुलाने को भेजा है। नहीं तो कैसे हो सकता है कि महारानी अपने पाँव का गहना लौंडी को दे दें।

इरा—तब तो इनको बड़ा आदर किया।

निपु—तो आप महाराज को क्यों नहीं ढूँढ़तीं ?

इरा—एरी ! मेरे पाँव आगे नहीं पड़ते। मद के मारे मैं बेबस हो रही हूँ। देख तो मेरी शंका ठीक ठीक है या नहीं (मालविका को देख के आपही आप) मेरे मन की शंका झूठी नहीं जान पड़ती।

वकु—(पाँव दिखा के) क्यों रंग अच्छा लगता है कि नहीं ?

माल—मैं अपने पाँव को अपने मुँह से कैसे सराहूँ, पर यह तो बता कि तुझे यह काम किसने सिखाया।

बकु—इस काम में तो महाराज ही मेरे गुरु हैं।

विदू—तो आप गुरुदक्षिना लेने को बढ़िये न।

माल—अच्छी बात है कि तुझे गर्व नहीं है।

बकु—अब अपने गुन के अनुसार पाँव पाकर मुझे गर्व होगा, (रंग को देख के आप ही आप) मेरा गर्व ठीक है। (प्रगट) सखी एक पाँव रँग चुकी, अब इस पर फूकने ही का काम है। यहाँ तो आप ही हवा चल रही है।

राजा—मित्र देखो, देखो,

फूँकि फूँकि निज साँस सों गीले पद सुकुमार।
सेवा अवसर प्रथम यह देखहु प्रथम हमार॥

विदू—आप सोच काहे को करते हैं? यह अवसर आप को बहुत दिन तक मिलने वाला है।

बकु—सखी! तुम्हारा पाँव ऐसा लगता है मानो लाल कमल है। भगवान करे तुम महाराज की गोद में बैठो।

(इरावती निपुणिका का मुँह देखती है)

राजा—हम भी इस असीस को एवमस्तु कहते हैं।

माल—अरी ऐसी अनुचित बात न कह।

बकु—मैंने कहने ही की बात कही है।

माल—तू मुझे चाहती है न?

बकु—मैं अकेली थोड़ी ही हूँ।

माल—तो और कौन है?

बकु—अच्छा गुन पहिचाननेवाले महाराज भी तो।

माल—अरी, तू झूठ कहती है। मुझ में यह कहाँ है?

बकु—तुम में कैसे नहीं है? देखो, महाराज आजकल कैसे दुबले और पीले पड़ रहे हैं।

निपु—यह पापिनी पहिले की सिखाई सी जान पड़ती है

वकु—बड़ों ने कहा है कि प्रेम प्रेम ही से परखा जाता है। इसको नहीं मानती ?

माल—तू क्या बक बक कर रही है ?

वकु—नहीं, नहीं, महाराज को कही कह रही हूँ।

माल—अरी ! महारानी का रंग देख कर मेरा मन नहीं पतियाता।

वकु—क्यों, क्या वसन्त के अवतार से नये बौर को भँवरों के डर से करनफूल बनाने को न तोड़ेंगे ?

माल—अच्छा तो तू मेरी सहाय हो जा।

वकु—मैं तो वकुलावलिका हूँ। जितना ही मुझ से मेल होगा, उतना ही मेरा हाल खुलेगा।

राजा—वाह, वाह, वकुलावलिका, वाह !

लखि हिय भाव पाइ पुनि अवसर।
बोलन लगी जोग दे उत्तर।
रचि रचि युक्ति विचित्र बनाई।
प्यारहि लखहु राह पर लाई।
कहत साँच सब जन कामिन के।
रहैं प्राण बस नित दूतिन के॥

इरा—परी ! वकुलावलिका ने मालविका को जुगत बता दीन।

निपु—महारानी ! मन न भी चाहे तो भी तो कहने सुनने से हो जाता है।

इरा—मैं तो पहिले ही से जान गई थी, कुछ झूँठ थोड़ा ही था।

वकु—तुम्हारे दूसरे पाँव का भी रँगना हो गया, अब लाओ घुँघरू पहिना दें (घुँघरू पहिना के) अब उठो ; जो महारानी ने कहा है वह करो जिसमें अशोक फूले।

(दोनों उठती हैं)

इरा—सुना री ? कहती है कि महारानी ने कहा है ; अच्छा कुछ बात नहीं।

बकु—यही तो [illegible] गोला भोगने को तेरे सामने है।
माल—अरी ! कौन री ? महाराज तो नहीं ?
बकु—(मुसका के) नहीं, नहीं, महाराज नहीं; यह अशो डार में लटकता हुआ कलियों का गुच्छा; इसे कान पहिन लो। (मालविका घबड़ा जाती है)

विदू—आपने सुना ?

राजा—बस बस प्रेमियों के लिए इतनाही बहुत है।

एक आतुर प्रिय मिलन हित एक न मन कछु चाह।
ऐसे जन संजोग नहिं मो मन लहत उछाह॥
होत निरास संयोग हित धारत प्रेम समान।
ऐसे जन के प्रेम महँ मिल जायँ वर प्रान॥

(मालविका पल्लव का करनफूल बनाकर धीरे से अशोक के लात मारती है)

राजा—मित्र !

लाल पत्र लै रूख सन पद प्रहार इन कीन्ह।
दै एक रंग उपहार दोउ मोहि इन धोखा दीन्ह॥

माल—यह अशोक बड़ा ही नीच है। जो अब भी न खिले हे भगवान ! जो आदर मुझे महारानी ने दिया वह सुफल कर।

बकु—अरी ! इस में तेरा क्या दोष है ? जो यह तेरा पँ छूने का आदर पाकर भी न फूले तो बड़ा निर्गुण है।

राजा—नूपुर रुन झुन बजत कमल से पायन धारी।
मारि लात तोहि दीन्ह आज आदर जो प्यारी॥
जो अशोक तरुराज लसैं नहिं फूलन डारैं।
कामिन की सो चाह आप व्यर्थहि तो धारैं॥

मित्र कोई अवसर मिले तो पास चलैं।

विदू—आइए न, हँसी ही सही।

(दोनों आगे बढ़ते हैं)

निपु महारानी ! महाराज आए।

इरा—यह तो मैंने पहले ही समझा था ।

विदू—(आगे बढ़ के) भला, क्यों जी ? तुम्हें चा महाराज के अशोक को बाएँ पाँव से मारो ?

दोनों—(घबड़ा के) अरे, अरे, महाराज आगए ।

विदू—क्यों बकुलावलिका ! तू जानती थी और तूं ऐसा बुरा काम करते न रोका ?

(मालविका डरती है)

निपु—रानी ! देखो गौतम ने कैसा ढंढ फैलाया ।

इरा—फिर नीच बाम्हन खाने को कैसे पावै ।

बकु—ब्राम्हन देवता ! बड़ी महारानी ने इन्हें भेजा का कुछ दोष नहीं, महाराज ! छमा करो ।

(मालविका समेत राजा के पाँव पड़ती है)

राजा—जो ऐसी ही बात है तो तुम्हारा अपराध नहे उठो । (हाथ से मालविका को उठाता है)

विदू—ऐसे काम में बड़ी महारानी की अज्ञा जरूर चाहिए ।

राजा—(हँस के)

कहँ यह रूख कठोर, कहँ नव पल्लव के सरिस
चरनकमल यह तोर, दूखत ह्वैहैं चोट से ॥

(मालविका लाज से सिर नीचा कर लेती है)

इरा—हमारे महाराज का चित्त भी माखन सा है, में पिघल जाता है ।

मालविका—बकुलावलिका ! आओ, महारानी से कह दें कि हम लोगों ने अपना काम कर दिया ।

बकु—महाराज से छुट्टी माँगो ।

राजा—जाओ, जब अवसर होगा तब हमारा भी सुनना ।

वकु—जब क्या अभी सावधान होके सुन न लो महाराज क्या कहते हैं।

राजा—यहि जनतरु लागत नहीं रुचिर हर्ष के फूल।
परसि परसि विकसाइए अब यहि ह्वै अनुकूल॥

इरा—(झट से आगे बढ़ कर) हाँ, हाँ जल्दी मनोरथ पूरा करो। अशोक में फूल नहीं लगते, इस में तो फल भी लगेंगे।

राजा—(अलग विदूषक से) भाई, अब क्या करें?

विदू—करना क्या है, भाग चलो।

इरा—वाह वकुलावलिका वाह! अच्छा लगा लगाया! अब महाराज का मनोरथ पूरा क्यों नहीं करती?

दोनों—महारानी! छमा कीजिए, हम कौन हैं जो महाराज से प्रेम करें। (दोनों बाहर जाती हैं)

इरा—पुरुष का विश्वास कभी न करे। हा, आज मैंने तुम्हारी बात पर भरोसा करके अपनी छाती आप फाड़ी। मैं क्या जानती थी कि व्याधा की बोल सुन्ने वाली हरनी की नाईं मेरा गला काटा जायगा।

विदू—(अलग राजा से) अरे, कुछ उत्तर गढ़ो, कुछ बात बनाओ। यही कहो जैसे कोई चोर चोरी करने जाय और जब पकड़ गया तो कह देता है हम चोर पकड़ने आए थे।

राजा—प्यारी! मालविका से मुझे क्या काम था। तुम ने देर की इस से मैंने ज्यों त्यों अपना जी बहलाया।

इरा—तुम्हारी बात का ठिकाना नहीं। मैं क्या जानूँ कि आर्यपुत्र को जी बहलाने की ऐसी चीज़ मिल गई। नहीं तो मैं काहे को ऐसा दुख देती।

विदू—महारानी! महाराज को क्यों झिरकती हो? महारानियों की चेरियों से बोलना भी अनुचित समझो तो जो तुम कहो सो सहो

इरा—बोलिए न, मैं जाती हूँ, मैं क्यों दुख सहूँ।

(रूस के चलना चाहती

राजा—(पीछे चल कर) मान जाओ।

(इरावती का पाँव नारे में फँस जाता है पर चली जाती है)

राजा—प्यारी! यह बात अच्छी नहीं लगती कि जो प्यार करे उस से भागो।

इरा—तुम सठ हो, तुम्हारी बात का ठिकाना नहीं।

राजा— तुम सठ कहो साँच मैं जाना।
अब यह तजिय करिय जनि माना॥
चरन परत मेखला तुम्हारी।
तुम नहिं तजहु कोप यह भारी॥

इरा—यह पापी भी तुम्हारा साथ देता है।

(करधनी उठा लेती है और महाराज को मारना चाहती है)

राजा— क्रोध हेत आसार गिरावत।
मारनहित करधनी उठावत॥
मेघपाँति जिमि विन्ध्यपहारहि।
बिजुरीडोरि रुचिर सन मारहि॥

इरा—क्यों, फिर मेरे साथ ऐसा करोगे?

राजा—(हाथ पकड़ लेता है)

तू अति सुन्दरि लगति मोहि देत यदपि बड़ दंड।
कहु केहि हित निज दास पर तव यह क्रोध प्रचंड॥

अच्छा अब तो मान जाओ। (पाँव पड़ता है)

इरा—मेरे पाँव मालविका के पाँव थोड़े ही हैं कि आप मनोरथ पूरा करेंगे। (चेरी समेत बाहर जाती

विदू—उठिए, उठिए, आप का अपराध क्षमा नहीं हुआ।

राजा—(उठके इरावती को न देखकर) क्या चली गई?

विदू—अजी, बहुत अच्छी बात है कि यह अपराध क्षमा न हुआ। मैं भी भागता हूँ। कहीं मंगल की नाई फिर न लौटआवे

राजा—हात तेरे काम की। मेरा चित तो मालविका में लगा है।

मैं जान्यो यह भल भयो गई जो विनय न मानि।
प्रेमी जन किमि त्यागिये कोप किये मन जानि॥

तो, अब चलो रानी को चल के मनावें।

(दोनों बाहर जाते हैं)

चौथा अङ्क।

[स्थान—राजमन्दिर का एक कमरा]

(काम की अवस्था में पड़ा राजा बैठा है और प्रतिहारी खड़ी है)

राजा—(आपही आप)

नेह लता गुन सुनत ही जड़ पकड़ी करि आस।
दृगगोचर सोइ होत किय रागप्रवाल प्रकास॥
कर परसत पुलकत सुतन लगे तहाँ जनु फूल।
फल रस चाखौं वेगि यह होय दैव अनुकूल॥

राजा—अजी गौतम!

प्रतीहारी—श्री महाराज की जय हो। गौतम यहाँ नहीं है।

राजा—(आपही आप) अहा! हम ने मालविका का हाल जानने उसे भेजा है।

(विदूषक आता है)

विदू—श्री महाराज की जय हो।

राजा—जयसेना! देख तो बड़ी महारानी पाँव की पीरा से कहाँ जी बहला रही हैं।

प्रती—जो श्री महाराज की अज्ञा। (बाहर जाती है)

राजा—गौतम! कहो तुम्हारी सखी कहाँ है?

विदू—क्या हाल कहैं, वहीं है जो बिल्ली के पंजे में कोयल का होता है।

(दुख से) कैसे?

विदू—उस बेचारी को उस लालआँखवाली ने तहखाने मे बन्द कर दिया है।

राजा—उन्हें कुछ पता लग गया क्या ?

विदू—और क्या।

राजा—हम लोगों का कौन ऐसा वैरी है जिसने महारानी को ऐसी निर्दयी कर दिया ?

विदू—सुनिये, मुझ से योगिन ने कहा है, कल ही महारानी इरावती बड़ी महारानी के पास उनके पाँव का हाल पूछने गई थी।

राजा—तब फिर ?

विदू—तब बड़ी महारानी ने उनसे पूँछा 'क्या बिना सिंगार किए अपना तन तुम्हें अच्छा लगता है' ? तब उन्होंने जल के उत्तर दिया कि पति का प्रेम टहलनियों पर चला गया तो अब काहे को कोई सिंगार करै।

राजा—हाँ, इतने ही मे महारानी मालविका को समझ गई होंगीं। और आगे कहने का कौन काम।

विदू—फिर जब महारानी ने वारबार पूँछा तो आप का लंगरपन भी उन्होंने बड़ी महारानी से कह दिया।

राजा—इसने तो बहुत बुरा माना। फिर क्या हुआ।

विदू—तब और क्या होता। मालविका और वकुलावलिका बेडी पहिने हुए अँधेरे तहखाने में नाग कन्याओं की नाई पाताल वास कर रहीं हैं।

राजा—हाय, हाय,

भ्रमरी अरु कोयल रुचिर, तिनकी मीठी बोल।
प्रबल वायु अरु वृष्टि बस, गईं आम की कोल॥

भला कोई उपाय हो सकता है ?

विदू—क्या हो सकता है ? माधविका, जो रखवारी है, उसे महारानी ने आज्ञा दी है कि जब तक मेरी अँगूठी न देखना तब तक इस पापिन और को न जाने देना

राजा—(साँस लेकर) क्यों भाई, अब क्या करना होगा ?

विदू—(सोच के) है तो एक उपाय ।

राजा—क्या है ?

विदू—(आँख झपका के) कोई सुनता तो नहीं है ? कान में कहूँगा । (महाराज को लिपट के कान में कहता है) यही, यही ।

राजा—वाह, वाह, करो न ।

(प्रतीहारी आती है)

प्रती—श्री महाराज ! महारानी सेज पर बयारि में बैठी हैं चेरियाँ चन्दन लगा के हाथों में उनका पाँव लिए हैं और योगिनी जी उनका जी बहलाने को कहानी कह रहीं हैं ।

राजा—चलने का अवसर यही है ।

विदू—तो चलिए । मैं भी महारानी के पास चलने को कुछ ले आऊँ ।

राजा—जाने से पहिले जयसेना को हम लोगों का मत जनाते जाओ ।

विदू—अच्छा (कान में) हूँ हूँ । (बाहर जाता है)

राजा—जयसेना ! बताओ तो बड़ी महारानी कहाँ हैं ?

(दोनों बाहर जाते हैं)

[दूसरा स्थान—महल का आँगन]

(पलंग पर धारिनी पड़ी है, योगिनी और चेरियाँ सब बैठी हुई हैं)

धारि—माता जी ! बहुत अच्छी कथा है । कहिए फिर क्या हुआ ।

योगि—(आँख झपकाके) अब फिर कहैंगे । देखो महाराज आगए

(प्रतीहारी समेत राजा आते हैं)

धारि—अरे ! क्या महाराज ! (उठना चाहती है)

राजा—न, न, आदर का काम नहीं ।

दुःख देन कोयलवयनि यहि छन उचित न तोहि ।
धरे हेम के पीठ पै निज चरनहि अरु मोहि ॥

धारि—आर्यपुत्र की जय हो ।

योगि—महाराज की जय हो ।

राजा—(योगिनी को देख प्रणाम करके, बैठ के) महारानी ! अब कुछ पीरा कम हुई ?

धारि—है, कुछ कम है ।

(जनेऊ से अँगूठा बाँधे घबड़ाया हुआ विदूषक आता है)

विदू—बचाइए, बचाइए । अरे मुझे साँप ने काट खाया ।

(सब घबड़ा जाते हैं)

राजा—हाय, हाय, क्यों घबड़ाए हो ?

विदू—महारानी को भेट देने को फूल लेने बाग़ गया था ।

धारि—हाय, हाय, मेरे ही कारण इस बाम्हन के प्राण संकट मे पड़े ।

विदू—तब अशोक के फूल लेने को जैसे ही दहिना हाथ बढ़ाया तैसेही कोटर से निकल के साँप के भेस में काल ने मुझे डस लिया । देखो यह दो दाँत बने हैं । (दिखाता है)

योगि—श्राव दहन अरु रक्त सब चूसन काटन अंग ।
ए उपाय सब कीजिए जब नर डसत भुजंग ॥

अब विषबैद्यों का काम है ।

राजा—जयसेना ! जल्दी ध्रुवसिद्धि को बुलाओ ।

प्रती—जो महाराज की आज्ञा (बाहर जाती है)

विदू—हाय रे ! मुझे मौत ने घेर लिया ।

राजा—डरो न । ऐसा भी होता है कि साँप में विष न हो

विदू डरूं क्यों न ? मेरे अग अंग टूट रहे हैं

(विष का फैलाना जनाता है)

धारि—हाय, बेचारे का रोग बढ़ गया। इसे सँभालो।

(योगिनी घबड़ा के पकड़ लेती है)

विदू—(राजा को देख के) महाराज! मैं तुम्हारे लड़कपन का साथी हूँ। मेरी मा बिचारी अनाथ हो जायगी, उस के खाने पीने का प्रबन्ध कर दीजिएगा।

राजा—डरो न, बैद तुम को तुरत ही अच्छा कर देगा, धीरज धरो।

(जयसेना आती है)

जय—श्रीमहाराज! ध्रुवसिद्धि कहता है कि गौतम को मेरे पास लाओ।

राजा—तो वर्षवर के साथ इसे जल्दी उस के पास ले जा।

जय—जो आज्ञा।

विदू—(महारानी की ओर देख के) महारानी! जिऊँ या न जिऊँ, जो कुछ महाराज की सेवा में मैंने आप के सामने अपराध किए हों उन्हें छमा कीजिएगा।

धारि—अजी तुम सौ बरस जियो।

(विदूषक और प्रतिहारी जाते हैं)

राजा—यह बेचारा स्वभावही से डरपोक है, यह नहीं समझता कि ध्रुवसिद्धि में नाम के अनुसार गुण है।

(जयसेना आती है)

जय—महाराज! ध्रुवसिद्धि कहता है कि जलकुम्भ बनाने को नागमुद्रा चाहिये। सो वह कहीं ढुँढ़वाइए।

धारि—इस अँगूठी में तो नागमुद्रा लगी है, लेजा, फिर इसे मेरे ही हाथ में देना।

राजा—जयसेना, अपना काम करके जल्दी अँगूठी लेआ।

जय—जो श्रीमहाराज की आज्ञा। (बाहर जाती है)

योगिनी हम तो ˜ हैं कि गौतम का विष दूर हो गया

राजा—आप का वचन सच हो।

(जयसेना आती है)

जय—महाराज की जय हो। गौतम का विष दूर होगया। थोड़े देर में चंगे होजाँयगे।

धारि—बड़ी बात कि मेरे ऊपर से कलंक उतर गया।

जय—महाराज! मंत्रीजी बिनती करते हैं कि बहुतसा राज त देखना है, महाराज का दर्शन हो सके तो बड़ा अनुग्रह हो।

धारि—जाइए आर्यपुत्र, राजकाज कीजिए।

राजा—रानी! इस जगह धूप आती है। लोग कहते हैं कि ः से पीरा घटती है। पलँग कहीं और हटवा दो।

धारि—चेरी! जो आर्यपुत्र कहते हैं वही करो।

(चेरियाँ वैसा ही करने लगती हैं)

(योगिनी, महारानी, चेरियाँ, सब बाहर जाती हैं)

राजा—जयसेना! किसी छिपी राह से प्रमदबन चल।

जय—आइए श्री महाराज।

राजा—जयसेना! जान पड़ता है कि गौतम का काम होगया।

जय—जी हाँ।

राजा—प्रिया मिलन हित मैं जदपि करहुँ अनेक उपाय।

तऊँ सिद्धि सन्देह बस मों जिय अजहुँ सकाय॥

(विदूषक आता है)

विदू—श्री महाराज की जयहो। आपके मंगलकाज सिद्ध होगए।

राजा—जयसेना! तुम भी जाओ, अपना काम करो।

जय—जो श्रीमहाराज की अज्ञा। (बाहर जाती है)

राजा—गौतम! माधविका तो बड़ी चतुर है, वह कुछ मीन नहीं लाई?

विदू—महारानी की अँगूठी देख के क्या कह सकती थी?

राजा—मैं अँगूठी की बात नहीं कहता। वह यह पूँछ सकती कि इन दोनों बन्दियों के छुडाने का कारन क्या था जो अपने

सब नौकरचाकर छोड़ के यह काम महारानी ने तुम्हीं को सौंपा।

विदू—यह तो उसने पूँछा था। मेरा भी जवाब तो तैयार था।

राजा—कहो क्या कहा।

विदू—मैंने कहा, महाराज से ज्योतिषियों ने कहा है कि आप के ग्रह अरिष्ट होने चाहते हैं, तो आप के राज के सब बन्दियों को छोड़ दीजिए।

राजा—(हर्ष से) फिर ?

विदू—इस बात को महारानी धारिणी ने जब सुना तब उन्हों ने रानी इरावती का मान रखने के लिये मुझ से कहा कि बन्दी छुड़ा दो और यह कह दो कि महाराज की आज्ञा से बन्दी छोड़े जाते हैं। इस पर माधविका ने अच्छा कहकर मेरी बात मान ली।

राजा—(विदूषक को छाती से लगा के) मित्र, अब मैं ने जाना कि तुम्हें मुझ से सच्चा प्रेम है। क्योंकि अपने

होत न केवल बुद्धि सन जन निज मित्र सहाय।
काजसिद्धि की राह नित नेह देत दिखराय॥

विदू—अब आप चलिए। मैं मालविका को सखी समेत समुद्र गेह में छोड़ आया हूँ।

राजा—चलो। ——— (दोनों बाहर जाते हैं)

[तीसरा स्थान—बाग़ में एक कुंज]

(राजा और विदूषक आते हैं)

विदू—आइए, (चल कर) यही समुद्रगेह है।

राजा—(डरता हुआ) मित्र, तुम्हारी सखी इरावती की चेरी चंद्रिका फूल चुनती आ रही है। आओ हम दोनों भीत की ओट में हो जाँयं।

विदू—अरे, चोर और कामी दोनों को चंद्रिका से बचना ही चाहिए। (दोनों छिप जाते हैं)

राजा—क्या तुम्हारी सखी मेरी राह देख रही है? आओ इसी झरोखे की राह से झाँकें (वैसा ही करते हैं

(मालविका और वकुलावलिका आती हैं)

वकु—सखी! महाराज के पाँव पड़ो।

माल—हा प्राणनाथ! निस दिन मेरे हिय के साथी! तुम को प्रणाम है।

राजा-मैं समझताहूँ कि वकुलावलिका मेरी तसवीर देखा रही है।

माल—(विषाद से देख के) अरी तूने मुझे बड़ा धोखा दिया।

राजा—प्यारी का हर्ष और विषाद भी आनन्द देता है।

भानु उवत बूड़त लहत जो छवि नित जलजात।
सो छबि सुन्दरि बदन महँ यहि छन प्रगट लखात॥

वकु—यह क्या चित्र में महाराज बैठे हैं।

दोनों -(पाँव पड़ के) महाराज की जय हो।

माल—हाँ, जब मैं महाराज के सामने खड़ी थी, तब उनका रूप देख कर मेरा जी इतना नहीं भरा जैसी अब हो रही हूँ।

विदू—सुना आपने? कहती है कि जैसा आपने उन को देखा वैसा उन्हों ने आप को नहीं देखा, व्यर्थ आप अपनी जवानी का गर्व करते हैं।

राजा—मित्र! स्त्रियों में नई वस्तु देखने का कुतूहल तो होता है, परन्तु स्वभाव ही से ढीठ नहीं होतीं। देखो,

प्रथम समागम ही चहत जदपि रूपरस लैन।
तऊँ लाजवस तियन के परत न प्रियअंग नैन॥

माल—अरी, यह कौन है जो थोड़ा सा मुँह फेरे है और जिसकी ओर स्वामी ऐसे प्रेम से देख रहे हैं।

वकु—यह तो इरावती पास खड़ी है।

माल—मुझे तो महाराज बड़े कठोर देख पड़ते जो सब रानियों को छोड़ एक इन्हीं की ओर देख रहे हैं।

वकु—(आपही आप) अरी, महाराज का चित्र सच्च समझ के यह रोस कर रही है, अच्छा इसको खिझाऊँ (प्रकाश) अरी यह की प्यारी हैं

मल—तो फिर मैं क्यों दुख सहूँ। (इतना कहकर रोस से
फेर लेती है)।

राजा—मित्र, देखो, देखो,

भौंव चढ़ाय कछु तिलक बिगारी।
फेरि रोस सन मुँह सुकुमारी।
फरकत ओंठ कोप दिखरावत।
मान भाव सब प्रगट जनावत॥
नाटक हित जो गुरू सिखावा।
यहि अवसर इन सकल दिखावा॥

विदू—अब आप मनाने को तैयार हो जाइए।

माल—आर्य गौतम देखिये यह खड़े उन्हीं को देख रहे हैं।

(फिर मुँह फेर के खड़ी होना चाहती है)

वकु—(मालविका को रोक के) न, न, तुम रूस गई।

माल—अच्छा, जो मुझे रूसे बेर हुई हो तो मैं अब न रोस
ँगी।

राजा—(आगे बढ़ के)

केहि कारन तव कोप विसेखी।
मो मन भाव चित्र महँ देखी॥
तन मन धन सन दास तुम्हारो।
खरो मोहि निज सोंह निहारो॥

वकु—श्री महाराज की जय हो!

माल—(आपही आप) अरी! क्या मैंने चित्र देख के रो
ा! (लाज से हाथ जोड़ के खड़ी रहती है)

(राजा काम की आतुरता दिखाते हैं)

विदू—आप क्यों उदासीन से खड़े हैं, मानो आप से कु
म ही नहीं।

राजा—तुम्हारी सखी विश्वास नहीं करती।

विदू कैसे नहीं विश्वास करती?

राजा—सुनो,

है दृग गोचर सोइ प्रिया भागत बारहिं बार।
आइ भुजन के बीचहूँ खैंचत तव सुकुमार॥
कामातुर मोहिं जानि यहि विधि नित माया करत।
कहु किमि होइ सयानि मेरे मन परतीत तव॥

वकु—सखी! महाराज बहुत घबड़ाए हैं, चल के परतीत दिलाओ।

माल—अरी! मैं तो ऐसी अभागिनि हूँ कि मुझे सपने में भी महाराज का दर्शन दुर्लभ था।

वकु—महाराज! अब इनके बात का क्या उत्तर देते हो?

राजा—अरी! उत्तर देने का कौन काम है?

निजहि समर्प्यौं तव सखिहि कामआगि करि साखि।
अब मोहि सेवक जानियो नेह हृदय महँ राखि॥

वकु—बड़ी कृपा हुई।

विदू—(घूम के घबड़ाया हुआ) वकुलावलिका, देखो हरिन अशोक खाया चाहता है, आओ हाँक दें।

वकु—अच्छा।

राजा—देखो, तुम लोग सावधान रहना।

विदू—यही तो गौतम का भी अभिप्राय है।

वकु—गौतम जी! मैं भी छिप जाती हूँ, तुम दुआर पर रहो।

विदू—अच्छा।

(वकुलावलिका बाहर जाती है)

विदू—तो अब इसी सिला पर लेटूँ। (लेट कर सो जाता है)

(मालविका चकित सी खड़ी रहती है)

राजा—तजु असमंजस कोकिल बानी।
मोहि बहु दिन सन सेवक जानी॥
मोहि सहकार समान विचारी।
बनु अतिमुक्तिलता सुकुमारी॥

माल—महारानीके डरसे जो मुझे भाता भी है सो नहीं कर सकती।

राजा—डरो न, क्यों डरती हो।

माल—आप तो नहीं डरते, पर महारानी के आगे मैंने आप को ऐसा नहीं देखा।

राजा—प्रिया सौंह दच्छिण रहब प्रेमिन की नित रीति।
तव अधीन अब प्रान मम करिय प्रिया परतीत॥

(इरावती और निपुणिका आती हैं)

इरा—एरी निपुणिका! क्या तुझ से सच मुच चन्द्रिका ने कहा है कि मैंने पोखरे के ऊपर कुञ्ज की सीढ़ियों पर अकेला गौतम लेटा देखा है?

निपु—न कहे होती तो मैं महारानी से कैसे कहती।

इरा—तो चल, वहीं चलें, बेचारा बड़ी आपत से बचा है, सो उसका हाल पूछें।

निपु—और भी तो आप का कुछ अर्थ है।

इरा—हाँ है न, आर्यपुत्र के चित्र से बिनती करके मनावैं।

निपु—तो आप ऐसे क्यों महाराज को मनाती हैं?

इरा—अरी! जब आर्यपुत्र का मन और कहीं लगा तब तो वह चित्र ही के बराबर है। मेरा तो अर्थ अब यही है कि मैंने उन का आदर नहीं किया था, सो उसी लिये बिनती करूं।

निपु—इधर चलिए।

(दोनों इधर उधर चलती हैं)

(चेरी आती है)

चेरी—महारानी की जय हो। बड़ी महारानी कहती हैं कि अब लड़ाई करने या बुरा मानने का अवसर नहीं है। तुम्हारे ही मान बढ़ाने के लिए हमने मालविका को उसकी सखी के साथ बन्द किया था और जो चाहो तो आर्यपुत्र से भी तुम्हारे लिये कहैं।

इरा—नागरिका! महारानी से जाके कह कि मैं कौन हूं जो महारानी से ऐसे काम के लिये कहूँ उन्हों ने तो अपनी हँ

टहलनियों को बन्द करके मुझ पर कृपा की है, और कौन है जिसके प्रसाद से मेरा मान बढ़े ?

चेरी—बहुत अच्छा। (बाहर जाती है)

निपु—(टहल के देख के) यह देखो समुद्र गेह के दुआर पर गौतम ऐसा पड़ा सो रहा है जैसे हाट में बैल सोता हो।

इरा—अरी, इसको क्या हुआ है, वही विष चढ़ा है क्या ?

निपु—इसके मुँह का रंग तो अच्छा है, और फिर ध्रुवसिद्धि ने उसको औषध दिया है, तो अब डर की बात क्या है ?

विदू—(सोते में बोलता है) मालविका !!

निपु—महारानी ! आपने सुना, यह पापी किसकी ओर है। जब देखो तो खाने की बातें करता है और अब मिठाई खा खा के जब पेट भरा है तो मालविका का सपना देखता है।

विदु—तुम इरावती से बढ़ जाओ।

निपु—देखा आप ने ? यही हुआ है। रहु, मैं इस बाम्हन को छिप के लकड़ी से डराती हूँ। यह साँप से बहुत डरता है।

इरा—है तो यह पापी इसी के जोग।

(निपुणिका विदूषक के ऊपर लकड़ी गिराती है)

विदू—(जल्दी से उठ के) अरे ! दौड़ो रे दौड़ो ! मेरे ऊपर साँप गिर पड़ा।

राजा—(जल्दी निकल के) डरो न ! डरो न।

माल—(उसीके पीछे दौड़ के) आप जल्दी न जाइए, कहता है साँप है।

इरा—हाय, हाय, महाराज यहीं थे।

विदू—(हँस के) अरे, यह तो लकड़ी है। ठीक है, मैंने केतकी की कली से हाथ छेद के बहाना किया था, उसी का यह फल है।

(बकुलावलिका घबड़ाई हुई आती है)

बकु—महाराज ! न आइए, न आइए, एक साँप यहाँ देख पड़ता है।

इरा (जल्दी से राजा के पास जा के) कहिए दिन की भेंट अच्छी हुई ?

(इरावती को देख कर सब घबड़ा जाते हैं)

राजा—प्यारी ! यह तो नई चाल मिलने की है ।

इरा—बकुलावलिका ! अब तो कुटनी का काम कर के तेरा पेट भरा ।

बकु—(हाथ जोड़ के) महारानी ! मेरा कुछ अपराध नहीं है । मैंने जो किया सो महाराज से पूछ लीजिए । क्या मेढ़कों के बोलने से दई बरसता है ?

विदु—नहीं, ऐसा कब हो सकता है ? महाराज आप के पाँव पड़े और आप ने नहीं माना, सो महाराज रूसे हैं । आप अभी तक नहीं मानतीं ।

इरा—अरी, मैं रूस के क्या करूँगी ?

राजा—सच है, तुम्हारे रूसने का औसर नहीं है ।

बिन कारन कबहुक सुकुमारी ।
भई भृकुटि नहिं कुटिल तुम्हारी ।
बिना भए पूरन निसिनाहू ।
कबहुँक तेहि ग्रसि सकत न राहू ॥

इरा—आप ने अच्छा समझा । अब हमारे भाग्य और के हो गए, तो रूस के अपनी हंसी ही करनी है ।

राजा—तुम तो कुछ और समझती हो । अब तो सच मुच तुम्हारे रूसने का अवसर नहीं देखते । देखो उत्सव के दिन)

अपराधिहु परिजन नहीं कबहुँक बांधन जोग ।
छूटि मोहि परनाम हित अब आए ए लोग ॥

इरा—निपुणिका ! जाके महारानी से कह कि मैं ने आप का पक्षपात जान लिया । अब आज से मैं सावधान हो के रहूँगी ।

निपु—बहुत अच्छा । (बाहर जाती है)

विदू—(आप ही आप) अरे, बड़ा अनर्थ हुआ। पाला कबूतर बिल्ली के पंजे में आ गया!

(निपुणिका आती है)

निपु—मुझे राह में माधविका मिल गई। उस ने मुझ से यह कहा (कान में कहती है)।

इरा—(आप ही आप) ठीक है, इसी बाम्हन की करतूत है। (विदूषक को देख के प्रकाश) यह सब इसी बाम्हन की नीति है। यही इस काम का मंत्री है।

विदू—महारानी! जो मैं एक अच्छर भी नीति जानता होऊँ तो मैं अपनी गायत्री भूल जाऊँ।

राजा—(आपही आप) अरे! इस संकट से कैसे छुटैं?

(घबड़ाई हुई जयसेना आती है)

जय—महाराज! कुमारी वसुलक्ष्मी गेंद खेलती थी सो वानर देख के बहुत डरी है। महारानी की गोद में बैठी काँप रही है। किसी उपाय से बहलती नहीं।

राजा—हाय, हाय, लड़के भी बहुत डरते हैं।

इरा—आर्यपुत्र! जल्दी जाइए। ऐसा न हो कि घबराहट बढ़ जाय।

राजा—हम अभी उसे अच्छी कर देंगे।

(जल्दी से चला जाता है)

विदू—वाह रे वानर! तूने अपने भाई को बचा लिया।

(राजा, विदूषक, इरावती, प्रतिहारी बाहर जाते हैं)

माल—महारानी को चेत के मेरा कलेजा काँपता है, न जानूँ अब क्या सहना होगा।

(परदे के पीछे)

बड़ा अचरज है। पाँच दिन अभी पूरे नहीं हुए, और लाल अशोक में कली लग गई। जाके महारानी से कहूँ।

(दोनो सुन के प्रसन्न हो जाती हैं)

बकु—सखी ! घबड़ाओ न; महारानी अपनी बात कभी न टालेंगी ।

माल—तो अब हम लोग मालिन के साथ ही चलें ।

(सब बाहर जाती हैं)

पाचवें अङ्क का विष्कम्भक ।

[स्थान—राजमन्दिर में एक फुलवारी]

(मधुकरिका मालिन आती है)

मधुकरिका—मैंने लाल अशोक की चारों ओर बारी बना दी है । सब रीति भांति भी हो गई है । अब चल के महारानी से कह दूँ (चलती है) । हा, दैव को चाहिए कि मालविका पर दया करै । महारानी जो उन से इतनी रूसी हैं, इस बात से उन पर प्रसन्न हो जाँय । क्या जानै अब महारानी कहाँ हैं ? यह देखो महारानी का कुबड़ा सारसक मोहर किया हुआ चमड़े का थैला लिए आता है । चल के पूछूँ ।

(कुबड़ा आता है)

मालि—(आगे बढ़कर) सारसक ! कहाँ जाते हो ?

सारसक—यही एक महीने का दान है जो पढ़े लिखे बाम्हनों को दिया जाता है । जाता हूँ, पुरोहित के पास दे आऊँ ।

मालि—क्यों ?

सार—जब से बड़ी महारानी ने सुना है कि सेनापति जी ने कुँवर जी को घोड़े की रखवारी को भेजा है तब से उन की आयु बढ़ाने को २८ मोहर सुपात्रों को देती है ।

मालि—ठीक है, बड़ी महारानी कहाँ हैं ?

सार—बिदर्भ से उनके भाई ने एक चिट्ठी भेजी है वही मंगल गेह में सिंहासन पर बैठी सुन रही हैं

मालि—विदर्भ के राजा का कुछ हाल सुना ?

सार—महाराज की सेना ने बिदर्भ को जीत लिया और माधवसेन छोड़ दिए गए और एक दूत बहुत सा हीरा मोती भेट लेकर आया है, उसके साथ बहुत सी कला जानने वाली स्त्रियाँ भी हैं, सो वह महाराज के सामने कल्ह होंगीं।

मालि—अच्छा तो अब अपना कीजिए मैं भी महारानी के पास जाती हूँ।

(दोनों जाते हैं)

पांचवां अङ्क।

[स्थान—राजमन्दिर में आंगन]

(प्रतीहारी आती है)

प्रती—बड़ी महारानी के कहने से महाराज से कहने जाती हूँ कि अशोक की सत्कार विधि हो गई, अब आज आर्यपुत्र के साथ अशोक का फुलाना देखा चाहती हैं। महाराज अब धर्मासन से उठने ही वाले हैं। यहीं ठहरी रहूँ।

(परदे के पीछे)

जय जय समरबिजयी श्री महाराजाधिराज श्री विदिशेश्वर की।

रति लीन्हे संग रूप धरे ज्यों अनंग प्रभु,
विदिसा के बागन बसंत सरसायो है।
बिजयी कटकने तिहारे गज बांधने से,
बरदा के तरु सम बैरीहु दबायो है॥
रूक्मिणी हरी थी हरि राजश्री हरी है तुम,
एक ही विदर्भदेस दोउ जस पायो है,
सुर के समान भूप पंडित सुजान सोई,
हेत रचि पद्य गायो है॥

प्रती -जयजयकार हो रही है, इससे जान पड़ता है कि महाराज इधर ही आते हैं। मैं भी इन के सामने से हट कर इस फाटक की आड़ में हो जाऊँ। (कोने में खड़ी हो जाती है)

(राजा और विदूषक आते हैं)

राजा—दुर्लभ प्राणपियारि संग इक दिशि मिलन विचारि।
पुनि विदर्भ के भूप की सुनि सेना से हारि॥
ग्रीषम महँ जलधार बिच परे सरोज समान।
अति सुख सन विकसत हियो दुख सन होत मलान॥

विदू—मैं तो समझता हूँ कि अब आप सुखी ही होंगे।

राजा—कैसे ?

विदू—आज बड़ी महारानी ने जोगिन जी से कहा है कि तुमको सचमुच सिंगार करने का गर्व है तो मालविका को ब्याह का सिंगार करो। इस पर उन्होंने बड़ी चतुराई से मालविका को सँवारा है। कदाचित आपका मनोरथ पूरा कर दें।

राजा—मित्र ! हो सकता है, क्योंकि महारानी पहिले भी जो हमने चाहा वही करती रही हैं।

प्रती—(पास जाके) श्रीमहाराज की जय हो ! श्रीमहारानी जी ने कहा है कि मैं चाहती हूँ कि लाल अशोक की फूलने की छबि आज आर्यपुत्र के साथ देखूँ।

राजा—क्या महारानी वहीं हैं ?

प्रती—जी हाँ, सारे रनिवास को आदर भाव से सुख दे के मालविका और लौंड़ियों समेत आप की राह देख रही हैं।

राजा—भाई, महारानी धारिणी सदा हमारे अनुकूल ही रही है तो अब क्यों न हों। (हर्ष से विदूषक की ओर देख के) जय-सेना आगे चल।

प्रती चलिए (चलती है—सब बाहर जाते हैं

[दूसरा स्थान—फुलवारी]

(धारिणी और योगिनि बैठी हैं, चेरियाँ खड़ी हैं, राजा और विदूषक आते हैं)

विदू—अजी! प्रमदवन में तो वसन्त अपनी जवानी पर देख पड़ रहा है।

राजा—ठीक है,

आगे कीन्हें बौर यह खिलो सेवती संग।
देखि देखि ऋतुराज यह बाढ़त हिये उमंग॥

विदू—(आगे बढ़कर) अरे! यह लाल अशोक तो फूलों की चादर ओढ़े हुए है, देखिए तो।

राजा—कैसे अच्छे अवसर पर फूल खिले हैं,

जो अशोक पहिले खिले ऋतु को विभव जनाय।
यहि तरु पर सब की कली बरसि परी जनु आय॥

विदू—जी हाँ, अजी आप घबड़ाइये न, देखिए हम लोग पहुँच गए तो भी महारानी मालविका को अपने पास से अलग नहीं कर रही हैं।

राजा—मित्र देखो,

विनय सहित लखियत इतै देवि प्रिया के साथ।
धरती ज्यों नृपश्रिय लिए संग पसारे हाथ॥

माल—(आपही आप) मैं जानती हूँ यह सिंगार किस लिए हुआ है, तो भी मेरा हिया पुरइन के पत्ते पर पानी की नाईं काँपता है और बाईं आँख भी फड़क रही है।

विदू—महाराज! आज ब्याह के सुहाने जोड़े पहिन के मालविका और भी सुन्दर लगती है।

राजा—देख रहा हूँ, यह तो

सोहत सुचि दुककूल तन धारे।
कछु भूषन निज अंग सँवारे॥

उवत चन्द्र दरसत कछु तारा ।
चैत रैन सम मिटत तुषारा ॥

धारि—(उठ कर आगे बढ़ कर) आर्यपुत्र की जय हो !

विदू—बढ़ती हो आप की !

योगि—श्रीमहाराज की जय हो !

राजा—योगिनी जी प्रणाम ।

योगि—आपकी मनोकामना पूरी हो ।

धारि—(मुसका के) आर्यपुत्र ! यह हम लोगों ने आप के लिये संकेतघर बनाया है ।

विदू—अजी, तुम्हारा तो बड़ा आदर हो रहा है ।

राजा—(लाज और शोक से चारों ओर चल कर) अजी महारानी ने ठीक ही किया,

यह अशोक कहँ जोगहि जानी ।
यहि विधि आदर दीन्ह सयानी ॥
नहि ऋतु पर यह आप फुलाना ।
राख्यो नहिं बसन्तप्रिय माना ॥
तब उपाय आदर प्रगटावत ।
आजु फूल की बाढ़ जनावत ॥

विदू—अजी बेधड़क हो के इसकी जवानी देखो ।

धारि—किस की ?

विदू—खिले हुए लाल अशोक की ।

(सब बैठ जाते हैं)

राजा—(मालविका को देख के आपही आप) वाह, पास बैठे हैं तब भी वियोग है ।

चक चकई सम हम दोऊ सौंह तऊँ बिलगान ।
होन न देत सँयोग यह धारिनि रैन समान ॥

(कंचुकी आता है)

कंचु [illegible] की जय हो मन्त्री ने हाथ जोड़

कहा है कि विदर्भ से दो कलावती स्त्रियाँ आईं थीं सो राह की थकी थीं इससे श्रीचरणों के सामने नहीं गईं। अब वह श्री चरणों को दर्शन करने के जोग हुई हैं, सो क्या आज्ञा है?

राजा—ले आओ दोनों को।

कंचु—जो आज्ञा (बाहर जाके दोनों को साथ लेकर फिर आता है) इधर, इधर।

पहिली—अरी मदनिका! राजकुल में जाते हुए मेरा जी हुलसा सा जा रहा है।

दूसरी—अरी ज्योत्स्निका लोग तो बहुत कुछ कहते थे, आने वाले सुख दुख जी पहिले ही बता देता है।

पहिली—सच हो तो अच्छा।

कंचु—देखो, महाराज महारानीके साथ बैठे हैं आप लोग जाँयें।

(मालविका और योगिनी दोनों को देख के एक दूसरे को देखती है)

दोनों—(हाथ जोड़ के) श्रीमहाराज की जय हो! महारानी को भगवान बसाये रक्खें!

[महाराज की आज्ञा से दोनों बैठ जाती हैं]

राजा—आप लोगों ने कौन सी कला सीखी है?

दोनों—श्रीमहाराज! हमने गाना सीखा है।

राजा—महारानी! इन में से जो चाहो ले लो।

धारि—मालविका! तुम किसे अपने साथ रक्खोगी? तुम्हें कौन अच्छी लगती है?

दोनों—[मालविका को देखकर] अरे! बाई जी! [हाथ जोड़ कर] बाई जी की जय हो!

[मालिका और दोनों आंसू गिराती हैं]

(सब अचरज से देखते हैं)

राजा आप दोनों कौन हैं? और यह कौन हैं?

दोनो—श्री महाराज ! यह हमारी राजकुमारी हैं।

राजा—कैसे ?

दोनो—सुनिए श्रीमहाराज, विदर्भ के राज को जीत के जिस कुमार माधवसेन को महाराज ने बन्धन से छुड़ाया है उन की यह छोटी बहिन मालविका हैं।

धारि—अरे! क्या यह राजा की बेटी है ? अरे! मैंने क्या किया जो चन्दन की खड़ाऊँ बनाई ?

राजा—तो आप की यह दसा कैसे हुई ?

माल—(सांस लेकर आपही आप) दैव की इच्छा से।

दूसरी—जब कुमार माधवसेन पकड़ गए तो उन के मंत्री सुमति जी इन्हें हम लोगों की चोरी न जाने कहाँ ले गये थे।

राजा—इतना तो हमने भी सुना था।

दूसरी—मैं और कुछ नहीं जानती।

योगिनी—इन के पीछे की बात मुझ अभागिनी से पूछिए।

दोनों—यह तो कौशिकी जी की सी बोली जान पड़ती है।

माल—वेही तो हैं।

दोनो—योगिनी के भेस में कौशिकी जी पहिचानी नहीं जातीं। योगिनी जी पायलागैं।

योगि—भला हो।

राजा—यह सब आप ही के यहाँ के लोग हैं ?

योगि—जी हाँ।

विदू—तो आप इनका पूरा हाल बताइए।

योगि—(दुख से) अच्छा सुनिए ! माधवसेन के मंत्री मेरे बड़े भाई सुमित जी थे।

राजा—फिर ?

योगि—सो जब इनके भाई की यह दसा हुई, तो आपके सा सम्बन्ध करने की इच्छा से इन को मेरे संग लेकर कुछ लो विदिशा को आते थे उन्हीं के साथ चले

राजा—जी ?

योगि—सो राह में व्यापारी एक जँगल में होकर चले।

राजा—यहीं कुछ अनर्थ है।

योगि—तब हम लोगों पर

दोऊ बाँह के बीच बाँधे निषंगा।
धरे पाँव लौं मोर के पंख अंगा॥
परी डाकुओं की अनी एक भारी।
मचाते महा सोर कोदंडधारी॥

(मालविका डर के मारे काँपने लगती है)

विदू—आप क्यों डरती हैं ? योगिनीजी तो गए दिनों बातें कह रही है।

राजा—तब क्या हुआ ?

योगि—तब कुछ बेर तक तो हथियार बाँध कर डाकुओं , पीछे जितने सिपाही साथ थे सब भाग खड़े हुए।

राजा—हा ! अभी और भी दुख की कहानी सुननी है।

योगि—तब मेरे भाई सुमति ने

डरबस काँपत बाल यह ताहि बचावन लागि।
उरिन होन हित नाथसन दिए प्राण निज त्यागि॥

पहिली—हाय, सुमति जी मारे गए !

दूसरी—तभी तो बाई जी की यह दसा हुई !

(योगिनी के आँसू गिर पड़ते हैं)

राजा—योगिनी जी ! संसार में मरना तो सब ही को है, ...ं ने अपने स्वामी का धान्य सुफल किया, उनके लिए से...ना योग नहीं। तब ?

योगि—तब मैं तो बेसुध होगई, जब जागी तो इनका पता न

राजा—आप ने बड़ा दुख उठाया। फिर ?

योगि तब माई की लोथ आग को सौंप के मानो फि

विधवा हो के आप के राज में आई और यहाँ गेरुआ बाना पहिन लिया ।

राजा—आप ने बहुत अच्छा किया, सज्जनों की यही रीति है। और इन का क्या हुआ ?

योगि—डाकुओं के हाथ से बीरसेन ने छीना और बीरसेन ने महारानी के पास भेज दिया । जब मेरी पैठारी यहाँ हुई तब मैंने देखा, इतनी ही बात है ।

माल—(आप ही आप) देखें अब महाराज क्या कहते हैं ?

राजा—संसार में भी कैसे कैसे दुख और कैसे अपमान भोगने पड़ते हैं ।

महारानीपद जोग यह ताकहँ चेरि बनाय ।
पुछवाई पट ऊन सों मानहुँ देह नहाय ॥

धारि—माता ! तुमने अच्छा नहीं किया जो मालविका को जानतीं थीं और नहीं बताया ।

योगि—आप ऐसा न कहिए. मैं ने जो निठुराई की इसका कारन था ।

धारि—क्या कारन था ?

योगि—जब इन के पिता जीते थे तो देवयात्रा से लौटा एक सिद्ध आया था, उसने मेरे सामने कहा कि यह कन्या बरस दिन तक लौंड़ी रहेगी तब इसे अपने योग बर मिलेगा । मैं ने भी देखा कि आप की सेवा में इनका इतना कर्मभोग कट रहा है इसी में दिन बीतने के आसरे चुप बैठी थी ।

राजा—आपने बहुत अच्छा किया ।

(कंचुकी आता है)

कंचु—श्रीमहाराज ! आप की आज्ञा पाके मंत्री जी ने हाथ जोड के कहा है कि विदर्भ के विषय में जो करना था सो तो कर चुके, अब स्वामी का अभिप्राय   चाहता हूँ

राजा—मौद्गल्य हम तो चाहते हैं कि यज्ञसेन और माधव दोनों को राज बांट दें ।

एक उत्तर दूसर दछिन बरदा के दोउ पार ।
चन्द्र सूर सम रैन दिन लहैं राजअधिकार ॥

कंचु—मंत्रियों से कह आऊँ ।

(राजा उँगली से आज्ञा देता है)

(कंचुकी बाहर जाता है)

पहिली—(अलग मालविका से) बड़ी बात हुई जो महाराज ॅवर जी को आधा राज दे दिया ।

माल—उनके प्रान बचें मैं तो इसी को बहुत समझती हूँ ।

(कंचुकी आता है)

कंचु—श्रीमहाराज की जय हो ! मंत्री जी ने कहा है कि स्वामी विचार बहुत ही उत्तम है राजसभा में सब यही कहते हैं ।

आधे आधे राज पै दोनो लहि अधिकार ।
नृपशासन रहि हैं दोऊ यह अति उचित विचार ॥
एक एक की दाब सों ज्यों रथ के हय दोय ।
धुर खींचे सीधे चलैं सारथि के बस होय ॥

राजा—अच्छा, तो जाके राजसभा में कह दो कि सेनापति :सेन के नाम आज्ञापत्र अभी लिखा जाय ।

कंचु—जो स्वामी की आज्ञा !

(कंचुकी बाहर जाता है और भेंट और चिट्ठी लेकर फिर आता है)

कंचु—प्रभु की आज्ञानुसार पत्र लिखा गया और सेनापति पमित्र जी के पास से यह भेंट और यह पत्र आया है, स्वामी देख लें ।

(राजा उठकर आदर से भेंट और पत्र लेकर सेवक को दे देता है, सेवक पत्र खोलता है)

धारि—(आपही आप) मेरा जी इसी में लगा है ससुर जी और वसुमित्र कुशल से हैं कि नहीं, लड़के को सेनापति ने बड़े गाढ़े काम में डाला था ।

राजा—(बैठकर आदर से पत्र लेकर पढ़ता है) "स्वस्ति श्री चिरंजीवी अग्निमित्र को लिखा यज्ञभूमि से सेनापति पुष्पमित्र का बड़े प्यार से यथायोग्य पहुँचै । आगे विदित हो कि राजसूय यज्ञ करने के लिये बरस दिन का नेम करके जो घोड़ा हमने छोड़ा था और उसकी रखवारी के लिये सौ राजकुमारों के साथ वसुमित्र को भेजा था उसे सिन्धु के दक्खिन किनारे यवन सवारों की पल्टन ने पकड़ लिया इस पर बड़ी लड़ाई हुई ।

(महारानी घबराहट जनाती हैं)

राजा—लड़ाई हो गई ! (फिर पढ़ता है)

"महावीर वसुमित्र तब कीन्हों रिपुदल भंग ।
मारि भजाए यवन सब लीन्हों फेरि तुरंग ॥

धारि—अब मुझे धीरज हुआ ।

राजा—(फिर पढ़ता है) "सो अब हम अंशुमान के घोड़ा लाने पर सगर का सा यज्ञ कर रहे हैं सो अब पुराना विरोध भुला के बहुओं के साथ तुरंत चले आइये और यज्ञ सेवन कीजिए। इति"॥ बड़ी कृपा की ।

योगि—श्रीमहाराज, महारानी, बधाई है ।

पतिसंयोग सन जगविदित रहीं वीरतिय आप ।
आज वीरसूपद मिल्यो सुत के तेज प्रताप ॥

धारि—माता, बड़ी बात हुई जो लड़के ने अपने बाप के पैर पर पैर रक्खे ।

राजा—मौद्‌गल्य ! पट्ठे ने गजराज का काम किया ।

कंचु—श्री महाराज ।

बाड़व के उरुजन्म सम जासु वीरपितु आप ।
का जो कुवँर कर यहि विधि तेज प्रताप ॥

राजा—यज्ञसेन के साले समेत सब बन्दी छोड़ दो ।

कंचु—जो स्वामी की अज्ञा । (बाहर जाता है)

धारि—जयसेना ! जा, इरावती और सारे रनिवासमें लड़के का हाल कहि आ ।

(प्रतीहारी जाती है)

धारि—इधर तो आ ।

प्रती—(लौट के) जी आई ।

धारि—(अलग प्रतीहारी से) अशोक फुलाने के समय जो हमने मालविका से कहा था उसे इरावती से कहना और मालविका का हाल जो आज खुला है सब बता के हमारी ओर से विनती करना कि आप के कारन हम झूठी न बनै ।

प्रती—जो महारानी की आज्ञा । (बाहर जाके फिर आती है) महारानी ! कुवँर जी की जय की बात सुनते ही रनिवास ने मुझे गहनों का डिब्बा बना दिया ।

धारि—इसमें कौन बात है, सुख तो सब को एक सा है, लड़का जैसा मेरा वैसा उनका ।

प्रती—(अलग महारानी से) इरावती जी ने हाथ जोड़ के कहा है कि महारानी की बात कौन बदल सकता है ।

धारि—माता, आर्य सुमति जी ने तो पहिले ही चाहा था, अब तुम कहो तो मैं आज मालविका आर्यपुत्र के भेंट कर दूँ ।

योगिनी—अब वह आपही की लौंड़ी है, जो चाहिये कीजिए ।

धारि—(मालविका का हाथ पकड़ के) आर्यपुत्र ! आपने मुझे सुख सनेसा सुनाया, अब मेरी ओर यह भेंट ले लीजिए ।

(राजा लाज से सिर नीचा कर लेता है)

धारि—(मुसका के) क्या आर्यपुत्र मेरा मान रखना नहीं चाहते ?

विदू—जी नहीं, यह संसार की रीति है, दुलहा लजाता ही है

(राजा विदूषक को देखता है)

विदू—अजी! महारानी ने बड़ी कृपा करके मालविका को .हारानी की पदवी दी, सो आपको स्वीकार है?

धारि—अरे! यह राजा की बेटी हैं, इनको तो महारानी की पदवी जन्मही से मिली है, कहने का कौन काम है।

योगि—आप ऐसा न कहिए,

खानिहि से निसरै रतन जौ लौं चढ़ै न सान।
सोना संग संयोग के जोग न गनैं सुजान॥

धारि—(सोच के) माता! छमा कीजिये, अवसर की बात भूल गई, जयसेना! जा तो जोड़ा निकाल ला।

प्रति—जो महारानी की आज्ञा (बाहर जाती है और जोड़ा लिए हुए फिर आती है)।

धारि—(मालविका को कपड़ा पहिना के दुलहिन बना के) आर्यपुत्र अब लीजिये।

राजा—(सिर नीचा करके) हम तो तुम्हारी आज्ञा कैसे टाल सकते हैं।

विदू—वाह! वाह!! वाह!!! महारानी भी कैसी उदार है!

दास दासी—मालविका के पास जा के) महारानी की जय हो! (धारिणी योगिनी का मुँह देखती है)

योगि—आप के लिये यह कौन सी बड़ी बात है,

सौतहु दै सेवत पतिहि पतिसेवक कुलनारि।
औरिहु सरि कहँ देत नदि सिन्धु गोद महँ डारि॥

(निपुणिका आती है)

निपु—महाराज की जय हो। इरावती ने हाथ जोड़ के कह है कि मैंने आर्यपुत्र का अनादर किया। अब फिर आर्यपुत्र के जैसी इच्छा थी वैसा मैं कर चुकी, अब आप के मनोरथ पूरे हु से मेरे भी अपराध छमा कीजिए।

धारि—निपुणिका! आर्यपुत्र इनको कैसे भूल सकते हैं?

निपु—हम पर बड़ी कृपा हुई।

योगि—महाराज! माधवसेन इस सम्बन्ध से कृतारथ हुए। अब कहिये तो उन्हें बधाई दे आऊँ।

धारि—माता! तुमको न चाहिए कि हम लोगों को छोड़ दो।

राजा—हमारे यहाँ से चिट्ठी जायगी उसी में तुम्हारी भी बधाई लिखवा देंगे।

योगि—आप के स्नेह से हम आप के वस हैं, जो चाहिए कीजिए।

धारि—आर्यपुत्र! कहिए और भी कुछ आप के लिए मुझ से हो सकता है?

राजा—इससे बढ़ कर और क्या होगा?

> छिनसे निजबैरी सकल मिट्यो कलह को मूल।
> अब इतनहि चाहौं सुसुखि सदा रहो अनुकूल॥
> ईति उपद्रव सों बचैं दिन दिन प्रजासमाज।
> सुख सम्पति भोगैं सदा अग्निमित्र के राज॥

(सब बाहर जाते हैं)

इति श्रीवधवासी भूपउपनाम सीताराम कृत
मालविकाग्निमित्रभाषानाटक
समाप्त हुआ॥

Printed by Pt Ka ka Prasad Dikshit at be Nat ona Press Allahabad.